कृष्णदास संस्कृत सीरीज १९६

समयाचारतन्त्रम्

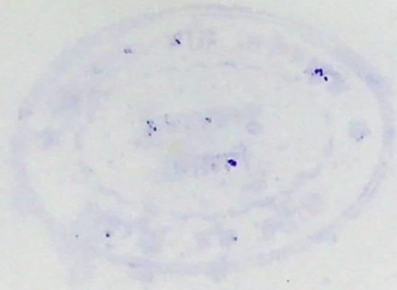
सम्पादक एवं टीकाकार

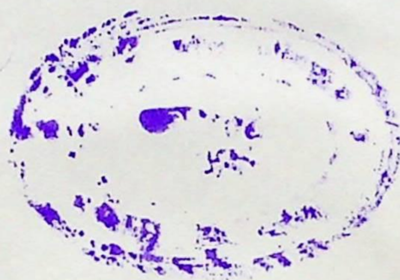
आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी



चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी







कृष्णदास संस्कृत सीरीज
१९६
***

समयाचारतन्त्रम्

'कल्याणी' हिन्दी टीका सहित

सम्पादक एवं टीकाकार

आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी



चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, सन् २००५
मूल्य : रू० ४५.००

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
web-site : www.chowkhambaseries.com

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
196
****

SAMAYĀCĀRATANTRAM

with
'Kalyani' Hindi Commentary

By
Acharya Mrityunjaya Tripathi



CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
Varanasi

Publisher : Chowkhamba Krishnadas Academy, Varanasi
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi

Oriental Publishers & Distributors
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1118, Varanasi- 221001
(INDIA)
Phone : (0542) 2335020



Also can be had from :
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers and Oriental and Foreign Book-sellers
K . 37/99, Gopal Mandir Lane
At the North Gate of Gopal Mandir
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi- 221001 (India)
Phone { Office : (0452) 2333458
Resi. : (0542) 2334032, 2335020
Fax : 0542-2333458
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
web-site : www.chowkhambaseries.com



प्राक्कथन

तन्त्रसाधना में भाव और आचार का विवेक, एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। जिसका आश्रय ले साधक अपने इष्टदेवता का, तत्सम्बन्धी आम्नाय के अनुरूप पद्धति एवं स्वगुरूपदिष्टमार्ग से पूजन कर अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है। पशु, वीर और दिव्य भाव तथा दक्षिणाचार, वामाचार, कौलाचार जैसे तीन प्रसिद्ध हैं। समयाचार नाम इन तीनों से अलग प्रतीत होता है। समयाचार के सम्बन्ध में पार्वती की विशिष्ट जिज्ञासा का निराकरण ही इस समयाचारतन्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य है। ६४ तन्त्र ग्रन्थों में इसका विशिष्ट स्थान है। यह ग्रन्थ पार्वती-महादेव संवाद के रूप में मुख्यत: अनुष्टुप् छन्दबद्ध रचना है। इसके वर्ण्यविषय को तीन क्रमों में विभाजित किया जा सकता है–

(क) नामकरण, (ख) आचरण, (ग) रहस्य।

नामकरण क्रम में 'समया' शब्द पर विस्तृत रूप से विचार हुआ है। पार्वती का प्रश्न ही है– **किन्नाम समया नाथ–**

यहाँ जिस देवता के पूजनादि का जो समय, इष्टावरण या विधि है तत्सम्बन्धी रहस्यकथन ही समया है जो इस समयाचारतन्त्र का प्रतिपाद्य है। इस प्रकार यथोक्त देवता का यथोक्त रीति से पूजन-विधान ही समयाचार है। अत: समयाचार का ज्ञान, तन्त्रमार्ग का मौलिक और आधारभूतज्ञान है। उस समयाचार का प्रतिपादक होने से लघुकाय होते हुए भी प्रस्तुत 'समयाचारतन्त्रम्' नामक ग्रन्थ तन्त्रशास्त्र में अपना विशेष महत्त्व रखता है।

नामकरण के ही क्रम में विभिन्न देवता से सम्बन्धित पूजन और तन्त्र सम्बन्धी विविध कर्मों के साधन हेतु समय और साधना में सहायक द्रव्यों का विशद वर्णन हुआ है।

शान्ति, वश्य (वशीकरण), स्तम्भन, द्वेषण, उच्चाटन और मारण इन छ: कर्मों के लिए उपयोगी छ: कालों का निर्देश, इसके समय सम्बन्धी ग्रन्थ होने की पुष्टि करता है। इसमें समया (विजया) नामक

औषधि के उपयोग, महत्त्व और तत्सम्बन्धी मन्त्र एवं स्तोत्र का वर्णन भी तन्त्रसाधकों की दृष्टि में इस ग्रन्थ की श्रेष्ठता प्रतिपादित करता है। **समया** एक तांत्रिक पूजा द्रव्य है। अत: उसके वर्णनक्रम में ही पूजा द्रव्यों का वर्णन, उनकी उपयोगिता, उनके संस्कार, ग्रहण की मात्रा और पद्धति का सारभूतवर्णन मिलता है।

''द्रव्य शुद्ध्यादि सकलं आनन्दार्थेन भक्षयेत् ।''
मोहाद्वा कामलौल्याद्वा यः कश्चिदिह वर्तते ।
सोऽधमः साधकानां च नारकी भवति ध्रुवम् ।।

जैसे संकेत न केवल इस ग्रन्थ की महत्ता के परिचायक हैं अपितु तन्त्र के संबंध में फैले भ्रान्तिरूप अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य तुल्य हैं।

समयविचार में सहायक उसका तत्त्वविचार भी साधना की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी हैं। क्योंकि–

यस्य भूतोदये देवि तत्तन्मण्डल संयुताम् ।
तत्तत्कर्माणि विधानार्थं कुर्वीत् निशितात्मना ।।

समय विवेक का ही एक अंश है।

'समया' विचार के पश्चात् आम्नायविचार इस ग्रन्थ का द्वितीय प्रतिपाद्य विषय है जो अपने आप में इसके रहस्य एवं आचरण खण्ड को समाहित किये हुए है।

आम्नायविचार में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व और अध: नामक षडाम्नायों की उत्पत्ति, नामकरण, उनसे सम्बन्धित देवता, पूजन-विधान, माला, आसन, तीर्थ और मन्त्रों का उपयोगी वर्णन मिलता है।

आचार की दृष्टि से यह दक्षिणाचार और वामाचार को कुलाचार के रूप सिद्ध करता है। आचार-विचार में विविध तन्त्रों का वर्णन, गुरु-शिष्य के लक्षण, इसे तन्त्रमार्ग के जिज्ञासुओं के लिये उपयोगी बनाते हैं।

इसके आचरणखण्ड की विशेषता है, पंचमकारों का वर्णन, पीठवर्णन, विशेषत: पंचमकर्म कार्य के रूप में पाँचवें मकार का वर्णन। साधना के मन्त्रजप, बलिदान, पूजन तीनों पक्षों पर समुचित प्रकाश इसमें डाला गया है।

रहस्यखण्ड में उत्तराम्नाय की श्रेष्ठता के साथ ही उससे सम्बन्धित मन्त्र, उसके देवता और पूजन पद्धति पर ग्रन्थकार का विशेष ध्यान है।

इसी क्रम में दस मन्त्रसंस्कारों का वर्णन भी हुआ है। तन्त्रों की कलियुग में गोपनीयता का रहस्य भी इसमें स्पष्ट किया गया है।
अन्त में तन्त्र के अधिकारी के विषय में–

''यदि च त्वत्समा लोके नारी भवति निश्चला ।
मत्समः पुरुषो देवि साधको यदि भूतले ।
भ्रान्तिमायादि रहितो तदा साधयितुं प्रिये'' ।।

एक महत्त्वपूर्ण संकेत देता है।

अपनी उपर्युक्त विशेषताओं के कारण यह 'समयाचारतन्त्र' अपने वर्ण्यविषय की दृष्टि से सिन्धु तथा आकार में बिन्दु हो तन्त्रज्ञान का बिन्दुरूप सिन्धु है जो तन्त्रसाधना के प्रारम्भिकज्ञान के प्रत्येक जिज्ञासु के लिए आवश्यक रूप से पठनीय है। ग्रन्थ से इसके उत्स एवं संग्रहकर्त्ता का तो पता नहीं चलता किन्तु इसकी उपलब्ध प्रति से ज्ञात होता है कि विक्रम संवत् १७३६ में मार्गशीर्ष सुदी ५ गुरुवार को श्रीपाद गणेश नाम के साधक ने स्वयं पठन हेतु इसे पुस्तक रूप दिया था। अन्त में गंगा के नमन् से यह गंगातट वासी विशेषतः काशी निवासी विद्वान् का संग्रह प्रतीत होता है।

इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के वर्तमान रूप में प्रकाशन का दायित्व लेकर **चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस** के स्वत्वाधिकारियों ने तन्त्र के मार्गानुयायियों का एक श्रेष्ठ सहयोग किया है जो उनकी उदात्त-परम्परा के अनुरूप ही है।

तन्त्र एक साधना का विषय है, अतः इससे सम्बन्धित ग्रन्थ की रचना, समीक्षा, अनुवाद आदि की पूर्णता का दावा नहीं किया जा सकता। वह तो अनुभूति से ही जानी जा सकती है। इसीलिए सुधी पाठकों से अनुरोध है कि अपने इष्टदेव के ध्यान सहित इसका अध्ययन एवं अवरोध की स्थिति में स्व गुरूपदिष्ट मति से आचरण करें। समयाचारतन्त्रम् एक संकेत है जो उन्हें लक्ष्य की दिशा में अग्रसर होने को प्रेरित करता है। लक्ष्य तो अन्तःस्फूर्त्त ही होगा।

सुधी पाठक व साधक इसकी त्रुटियों को सँवार कर इसे अपनायेंगे, ऐसा विश्वास है।

—मृत्युञ्जय त्रिपाठी

अनुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	पृष्ठाङ्काः
१.	प्राक्कथन	५
२.	समयास्तोत्रम्	१२
३.	द्रव्यवर्णनम्	१६
४.	कालवर्णनम्	१८
५.	आसनवर्णनम्	१९
६.	तत्त्वविचारः	२०
७.	आम्नायकथनम्	२०
८.	आम्नायदेवताकथनम्	२१
९.	आम्नायविधानवर्णनम्	२२
१०.	मालावर्णनम्	२३
११.	यन्त्रवर्णनम्	२५
१२.	आसनवर्णनम्	२५
१३.	जपस्थानवर्णनम्	२७
१४.	भगपूजावर्णनम्	२८
१५.	मन्त्रभेदवर्णनम्	२८
१६.	आचारवर्णनम्	३०
१७.	गुरुलक्षणम्	३१
१८.	शिष्यलक्षणम्	३२
१९.	पीठवर्णनम्	३९
२०.	बलिदानवर्णनम्	३९
२१.	मन्त्रवर्णनम्	४१
२२.	मन्त्रसंस्कारवर्णनम्	४४

***

कल्याणीटीकोपेतम्

समयाचारतन्त्रम्

श्री गणेशाय नमः

श्री पार्वत्युवाच

भगवन् गुणगणाधार सर्वत्र करुणानिधे ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि समयाचारमुत्तमम् ।।१।।

श्रीपार्वती बोलीं– हे भगवन् (शिव)! आप गुणों के समूह के आधारभूत हैं। आप सर्वत्र (सभी प्रसङ्गों में) करुणा के सागर अर्थात् परम करुणामय हैं। मैं इस समय आपसे उत्तम समयाचार के विषय में सुनना चाहती हूँ॥१॥

तत्पुरा समयाचारं पूर्वाम्नायेषु कीर्त्तितम् ।
पुनश्च श्रोतुमिच्छामि षडाम्नायेषु यद्भवेत् ।।२।।

यद्यपि वह समयाचार पहले ही आम्नायों के वर्णनप्रसङ्ग में आप द्वारा कहा जा चुका है तथापि मैं उसे पुनः सुनना चाहती हूँ जो छः आम्नायों में होना चाहिए॥२॥

किन्नाम समयानाथ तस्याश्चरणमुत्तमम् ।
तस्य संकेत विज्ञानाद्वांछितफलमश्नुते ।।३।।

हे नाथ! समया किसका नाम है? उसका उत्तम आचरण कैसे होता है? जिसके संकेत के विशेष ज्ञान से साधक वांछितफल को प्राप्त कर लेता है॥२॥

पूर्वादि आम्नायाः देवतायाः प्रकीर्त्तिताः ।
पृथक्पृथगुच्यते नाथ ब्रूहि महेश्वर ।।४।।

हे महेश्वर! हे नाथ! देवता के पूर्व आदि छः आम्नाय कहे गये हैं। उन्हें अलग-अलग भी कहा जाता है। उन्हें ही आप मुझसे पुनः कहिये॥४॥

आम्नायाद्वांछितानां च देवतानां पृथक् पृथक् ।
जपमालासनानां च तेषां वद् दयानिधे ।।५।।

हे दया के सागर! आम्नायों द्वारा भिन्न-भिन्न वांछित (अभीष्ट) देवताओं तथा उनकी उपासना में प्रयुक्त जपमाला, आसन आदि के विषय में भी आप मुझे बताइये॥५॥

श्रीमहादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं महत् ।
समयाचार संकेतं तन्त्रं परमदुर्लभम् ।।६।।

श्रीमहादेव बोले– हे देवि (पार्वती)! मैं तुमसे उस समयाचार संकेत नामक तन्त्र को कहूँगा जो गुप्त से गुप्त (अत्यन्त गोपनीय), परम दुर्लभ तथा महान् (श्रेष्ठ) तन्त्र है। तुम उसे सुनो॥६॥

पूजनादिषु यः काले देवतानां पृथक् पृथक् ।
सकल समयो नाम यं ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।।७।।

भिन्न-भिन्न देवताओं के पूजन आदि के समय प्रयुक्त होने वाली समस्त समयाओं को स्वस्थरूप से (पूर्णतः) जान कर साधक, अमरत्व को प्राप्त करता है॥७॥

कालेष्टावरणं देवि यस्य देवस्य यद्विधिः ।
तन्नाम समयाचारं देवानामपि दुर्लभम् ।।८।।

हे देवि! पूजन के समय जिस देवता का जो अभीष्ट आवरण होता है और उसके पूजन की जो विधि होती है। उसी का नाम समयाचार है और यह देवताओं को भी दुर्लभ है॥८॥

संकीर्त्तनात्पुनर्देवि रहस्यानां रहस्यकम् ।
समयाचार संकेतं नाम्ना तन्त्र प्रकीर्त्तितम् ।।९।।

हे देवि! तत्पश्चात् इसमें देवपूजन के रहस्यों के भी रहस्य का वर्णन किया गया है। इसीलिये इसे समयाचार संकेत नामक तन्त्र कहा गया है॥९॥

अथवा समयाचारात्समयाचारमुच्यते ।
समया गोपनीयानां सदागोप्या प्रकीर्त्तिता ।।१०।।

अथवा समयाचार के कारण यह समयाचार कहा जाता है। समया गोपनीयों में भी सदैव गोपनीय कही गई है॥१०॥

विधिना समयादेवि ये भुंजंति च साधकाः ।
तेन समुद्गता नित्यं भोगं कृत्वा सदाभुवि ।।११।।
इत्येवं समयानाम्ना सिद्धगन्धर्व सेविताः ।
अस्याभिधानाथ कथनादिदं तंत्रं प्रकीर्त्तितम् ।।१२।।

हे देवि! विधिपूर्वक जो साधक इस समया का भोग करते हैं वे इस पृथिवी पर उनसे उत्पन्न भोगों को का नित्य भोग करते हैं। यह समया नामक विधि सिद्ध-गन्धर्वों द्वारा आचरण में लाई गई है। इसके अभिधान, कथन आदि के कारण ही इसे तन्त्र कहा गया है।।११-१२।।

इदानीं यत्त्वया देवि किन्नाम समयाभुवि ।
कथितां विधिनामेत्तच्छृणुष्व वरानने ।।१३।।

हे सुन्दर मुख वाली देवि! जो तुम्हारे द्वारा पूछा गया है कि समया किसका नाम है? उसे इस समय पृथिवी पर मेरे द्वारा कहे जाते हुए तुम सुनो।।१३।।

ॐ अस्य श्रीवाग्वादिनी मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, देवविजयागायत्री-छन्दः, वाग्वादिनी देवता, ऐं बीजं, क्लीं कीलकं, सौः शक्तिः, श्री वाग्वादिनी देवता प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

हे देवि! ॐ इस श्री वाग्वादिनी मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि, विजया-गायत्री छन्द, वाग्वादिनी देवता, ऐं बीज, क्लीं कीलक, सौः शक्ति बताई गई है तथा वाग्वादिनी देवता की प्रसन्नता हेतु इसका विनियोग होता है।

एतैर्न्यासं कृत्वा संविद्गृहीत्वा पठनीयं मन्त्रं ।

इन्हीं से अंगन्यास एवं करन्यास करके संविद (विजया) ग्रहण कर नीचे लिखे मन्त्र को पढ़ना चाहिये।

पठनीय मन्त्रं–

'ऐं वद्वद् वाग्वादिनी सौः स्वाहा'

इस मन्त्र से सात वार अभिमंत्रित कर ग्रहण की हुई विजया का भक्षण करे।

अथवा

जय जय विजय विजय परब्रह्मस्वरूपिणी सर्वजनं मे वशमानय आनंदय ॐ जूँ सः स्वाहा।

इस मन्त्र का जप करने के पश्चात् उस ग्रहण की हुई संविद् का भक्षण करे।

अथवा स्वगृहीत मन्त्रेण जपित्वा भक्ष्येत्।

अथवा (गुरु द्वारा दीक्षा के समय) अपने ग्रहण किये हुए मन्त्र का जप करके संविद् का भक्षण करें।

अथानंतरतो देवि समया स्तोत्रमुत्तमम् ।
येनस्तुता सिद्धमूला भक्षिता फलदा भवेत् ।।२०।।

हे देवि! इस प्रकार से संविद् भक्षण के पश्चात् उत्तम समयास्तोत्र का पाठ करे। जिसके द्वारा स्तुति किये जाने के पश्चात् भक्षण की हुई सिद्धमूला फलदायिनी हो जाती है। (संविद्, विजया, सिद्धमूला सब भांग के ही पर्याय हैं)।

समयास्तोत्रम्

संविदे ब्रह्मसम्भूते ब्रह्मपुत्रि सदानधे ।
भैरवानन्द दीप्त्यर्थे पवित्रा भव सर्वदा ।।२१।।

हे संविदे। आप ब्रह्मा से उत्पन्न हुई हैं। अत: आप ब्रह्मा की पुत्री हैं, आप सदैव निष्पाप (दोषरहित) हैं, पवित्र हैं, आप मुझमें सदैव भैरवानन्द उद्दीप्त करने वाली होइये॥२१॥

नमामि यामिनीनाथं लेखालंकृत कुंतलाम् ।
भवानां भवसंताप निर्वापण सुधानिधि ।।२२।।

आपकी केशराशि रात्रि के स्वामी चन्द्रमा की आकृति से अलंकृत है। आप संसार में उत्पन्न प्राणियों के संसार संबंधी सन्ताप को दूर करने वाली सुधा अमृत की राशि, चन्द्रमा हैं॥२२॥

सिद्धमूलाश्रिये देवि ज्ञानबोधप्रबोधिनी ।
राजप्रजावशंकरि कालकंठत्रिशूलिनी ।।२३।।

हे देवि! आप सिद्धि की मूल, श्रीस्वरूपिणी, ज्ञान और बोध को प्रबोधित करने वाली हैं, आप राजा एवं प्रजा को वशीभूत करने वाली तथा काल के कंठ पर भी त्रिशूल आरोपित करने वाली अर्थात् काल को भी नष्ट करने वाली हैं॥२३॥

अज्ञानेन्धनदीप्ताय ज्ञानाग्निज्वालरूपिणी ।
आनंदाद्याहुति प्रीतिः सम्यक् ज्ञानं प्रच्छ मे ।।२४।।

आप अज्ञानरूपी इन्धन को जलाने के लिये ज्ञानरूपी अग्नि की ज्वालास्वरूप हो। आप मुझे आनन्दादि की आहुति से उत्पन्न प्रसन्नता तथा सम्यक्ज्ञान प्रदान करें।।२४।।

दंडाधिरूपपरिपूरित मोक्षभोग
शुंडक्रमेण मदनांजनकामिनीनाम् ।
आराधयामि बहुशत्रुपराजयंतम्
विश्वेश्वरीं त्रिभुवनां विजयेति देवि ।।२५।।

हे देवि! दण्ड के रूप में मोक्ष और भोग से परिपूर्ण कामिनियों के मदन (कामदेव) रूपी अंजन की वक्रता अर्थात् भंगिमा से बहुत से शत्रुओं को पराजित करने वाली, विश्व की स्वामिनी, तीनों लोकों को विजय करने वाली विजया देवी, मैं आपकी आराधना करता हूँ।।२५।।

आनंदनंदिनीं नंदे सदावंदे पदद्वयम् ।
उच्छ्वास कदलीकंदे स्वच्छन्दे बोधरूपिणी ।।२६।।

हे देवि! आप आनन्द को भी आनन्दित करने वाली हैं, मैं आपको प्रसन्न करता हूँ, आपके चरणयुगल की सदा वन्दना करता हूँ। आप उच्छवासरूपी कदली की कन्द हैं, आप निर्बन्धरूप से स्वच्छन्द तथा बोधस्वरूप हैं।।२६।।

कवयः कवितालहरीं कुरुते तत्वार्थदर्शनं पुंसाम् ।
अपहरति दुरितनिलयं किं किं न करोति संविदुल्लासः ।।२७।।

कविगण पुरुषों के तत्वार्थ का दर्शन तथा कविता लहरी का सर्जन इसी की कृपा से करते हैं। यह दुरितों के आश्रय को दूर हटाता है। इस प्रकार से संविद् का उल्लास क्या नहीं करता अर्थात् सब कुछ करता है।।२७।।

संविदासवयोर्मध्ये संविदेव गरीयसी ।
भक्षिता भवनाशाय निर्गन्धा बोधरूपिणी ।।२८।।

संविद (भांग) और आसव (मद्य) में संविदा ही श्रेष्ठ है! क्योंकि यह भक्षण किये जाने पर संसार का नाश कराने वाली है, इसमें आसव की भाँति गन्ध नहीं होती तथा यह ज्ञान को प्रबोधित करने वाली है।।२८।।

सुसंविच्छूलिनी देवी विजया संविदंकुरा ।
वैष्णवीं तुलसी गुंजा तेजोवल्ली रसेश्वरी ।।२९।।

देवी, सुसंविद, शूलिनी, विजया, संविदंकुरा, वैष्णवी, तुलसी, गुंजा, तेजोवल्लरी, रसेश्वरी आप ही हैं॥२९॥

विमर्शाद्वैतरत्ला च वीरलक्ष्मी महेश्वरी ।
समया मोहिनी चैव सिद्धमूला महौषधी ।
मानुषानज्ञानरूपाग्निश्च विद्या सरस्वती ।।३०।।

आप ही विमर्शा, अद्वैतरत्ना, वीरलक्ष्मी, महेश्वरी, समया, मोहिनी, सिद्धमूला और महेश्वरी भी हैं। आप मनुष्यों के अज्ञान को जलाने हेतु ज्ञानाग्निरूपा हैं, विद्या और सरस्वती भी आप ही हैं॥३०॥

येतु चैतानि नामानि सेवये सिद्धमूलिकाम् ।।३१।।
संप्राप्नोति परां विद्यां मुक्तिं भुक्तिं च वांछिताम् ।
पाण्डित्यं च कवित्वं च मन्त्रसिद्धिं च विन्दति ।।३२।।

इति समयास्तोत्रम् ।

जो ऊपर कहे इन इक्कीस नामों के उच्चारणपूर्वक सिद्धमूलिका का सेवन करता है। वह पराविद्या और इच्छित भोग तथा मोक्ष को प्राप्त करता है। साथ ही पाण्डित्य, कवित्व और मन्त्रसिद्धि को भी प्राप्त करता है॥३१-३२॥

समयागोपयेन्नित्यं शिष्येभ्यश्चापि सुन्दरी ।
विनासमयया देवि सामर्थ्यं नैव जायते ।।३३।।

हे सुन्दरि! समया को शिष्यों से भी नित्य गोपनीय रखना चाहिए। हे देवि! समया के अभाव में सामर्थ्य भी उत्पन्न नहीं होता है॥३३॥

सामर्थ्यसहितो देवि सर्वकर्माणि साधयेत् ।
विना समया पूजनं न कुत्रापि शुभोदयम् ।।३४।।

हे देवि! सामर्थ्य से युक्त होकर ही सभी कर्मों का साधन करना चाहिये क्योंकि समया बिना कहीं भी पूजन का शुभोदय नहीं होता॥३४॥

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय भक्षिता पापनाशिनी ।
तथा सूर्योदये जाते मध्याह्ने भक्षिता तथा ।।३५।।

यह ब्राह्ममुहूर्त में खाने पर, पाप का नाश करती है। सूर्योदय के पश्चात् या मध्याह्न में खाने पर भी वैसा ही फल देती है॥३५॥

तथापराह्ने विधिवत् सर्वपापविनाशिनी ।
अर्धरात्रौ विशेषेण वांछितार्थफलप्रदा ।।३६।।

यह उसी प्रकार अपराह्न में भक्षण करने से विधिपूर्वक सभी पापों का नाश करने वाली है। आधीरात में विशेष रूप से यह वांछितफल देने वाली होती है।।३६।।

विना समया या देवि जपपूजादिकं चरेत्।
न च सिद्धिमवाप्नोति अभिचाराय कल्पते।।३७।।

हे देवि! समया के बिना जो जप, पूजन आदि किया जाय तो वह सिद्धि को नहीं प्राप्त होता। वह मात्र अभिचार ही होता है।।३७।।

अपमृत्युहरानूनं रोगशोकविनाशिनी।
दुष्टशत्रुप्रशमनीं सर्वलोकानुरंजिनी।।३८।।

यह सेवन से निश्चित ही अपमृत्यु (अकालमृत्यु) को दूर करने रोग और शोक का नाश करने, दुष्ट शत्रुओं का शमन करने एवं सभी लोगों का अनुरंजन करने वाली है।।३८।।

सिद्धयोह्यणिमाद्याश्च तस्य हस्ते व्यवस्थिता।
कायिकं वाचिकं वापि मानसं चैवदुःकृतम्।।३९।।
एतत्सर्वं क्षयं याति ब्रह्महत्यादिकं तथा।
समयाभक्षिता येन समयाधारिता तथा।।४०।।

जिसके द्वारा समया, भक्षण की जाती है या धारण की जाती है वह अणिमादि (अणिमा, गरिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व) आठों सिद्धियों का स्वामी होता है तथा उसके शारीरिक, वाणी संबंधी या मानसिक, जो भी दुष्कर्म होते हैं, वे सभी तथा ब्रह्महत्यादि पाप भी क्षय को प्राप्त होते हैं अर्थात् नष्ट हो जाते हैं।।३९-४०।।

समयोपासिता येन रहितः सर्वपातकैः।
स शिवः स च योगी च स तपस्वी सती तथा।।४१।।
स एव मुक्तिमार्गस्थः समया येन भक्षिता।

जो समया का सेवन करता है, वह सभी पापों से रहित हो जाता है। वही शिव है, वही योगी, वही तपस्वी तथा सत्यवान है। वही मुक्तिमार्ग का पथिक है जिसने समया का भक्षण किया है।।४१।।

भक्षयित्वा च समयां यं यं मन्त्रं जपेन्नरः।
समस्तफलमाप्नोति सत्यं सत्यं वरानने।।४२।।

हे श्रेष्ठ मुखवाली पार्वती! मनुष्य (साधक) समया को खाकर जिन-जिन मन्त्रों का जप करता है वह उन सभी का फल प्राप्त करता है। यह सत्य है। यही सत्य है॥४२॥

विना समयया देवि मन्त्रं जपति नित्यशः ।
अल्पायुश्च भवेत् सद्यो देवता कोपयेद् ध्रुवं ॥४३॥

हे देवि! जो साधक नित्य बिना समया सेवन किये ही मन्त्र जप करता है वह अल्प आयु होता है तथा निश्चित रूप से शीघ्र ही वह देवता को अपने प्रति क्रोधित कर लेता है॥४३॥

द्रव्यादीनामलाभेऽपि नित्यकर्मनलोपयेत् ।
प्रमादाल्लोपयेद्यस्तु नरकं लभते ध्रुवं ॥४४॥

साधक को द्रव्य आदि के अभाव में नित्यकर्म का लोप नहीं करना चाहिये। जो आलस्य या उपेक्षावश नित्यकर्म का लोप करता है वह निश्चय ही नरक में जाता है॥४४॥

द्रव्यवर्णनम्

द्रव्यं बहुद्देश्यं विधं शृणु देवि पृथक् पृथक् ।
तेषां मध्ये च द्रव्य द्वे न योत्सतु कदाचन ॥४५॥

उद्देश्य के अनुरूप द्रव्य (सहायक पदार्थ) बहुत प्रकार के बताये गये हैं। उन्हें तुम मुझसे अलग-अलग सुनो। उनमें किन्हीं दो द्रव्यों का कभी भी एक साथ प्रयोग नहीं करना चाहिये॥३४॥

क्षीरं दधिं च तक्रं च घृतं छौद्रं गुडं तथा ।
शर्करा शीतलं तोयं मैरेयरनालकम् ।
आफुकं समयाचैव धत्तूरं च विषं तथा ॥४६॥

दूध, दही, मट्ठा, घी, मधु, गुड़, शर्करा, शीतल जल, मैरेय, अनालक, आफुक, समया, धत्तूर और विषय ये सब द्रव्य कहे गये हैं॥४६॥

धत्तूरं च विषं देवि द्रव्यं प्राणप्रदकैरकम् ॥४७॥
अन्यानि यानि द्रव्याणि आनन्दार्थं पिबेन्नरः ।
आनन्दं परमं ब्रह्म परशक्ति सदाशिवः ॥४८॥

हे देवि! उपर्युक्त द्रव्यों में धत्तूर और विष को मात्र सूँघना चाहिये। आनन्द प्राप्ति हेतु अन्य जो द्रव्य हैं, उन्हें मनुष्य (साधक)

पिये। क्योंकि आनन्द परमब्रह्म है। परशक्ति के साथ आनन्दावस्था में साधक सदाशिवरूप हो जाता है॥४७-४८॥

द्रव्यशुद्धयादि सकलं आनन्दार्थेन भक्षयेत् ।
आनन्दे जायमानोपि भक्षयन्न कदाचन् ।।४९।।

द्रव्य, शुद्धि आदि सबका आनन्द प्राप्ति के ही निमित्त प्रयोग करे, आनन्द उत्पन्न होने के पश्चात् कभी भी भक्षण न करे॥४९॥

अतिपानाद्भावेत्सद्यो जपपूजादि निःफला ।
बुद्धिनाशोभवेद विततो मात्रां मितां चरेत् ।।५०।।

बहुत अधिक पीने से जप, पूजा आदि शीघ्र ही निष्फल हो जाती है तथा बुद्धिनाश हो जाता है। अतएव सामर्थ्यानुसार सीमित मात्रा में इनका सेवन करना चाहिये॥५०॥

समात्रावर्त्तने देवि जपानन्द प्रवर्त्तते ।
अतिमात्राद्भवेदुखं लोके निन्दा प्रवर्तते ।।५१।।

मात्रानुसार ग्रहण करने से जप में आनन्द प्रवर्त्तित होता है। मात्रा से अधिक ग्रहण करने से दुःख और लोक में निन्दा होती है॥५१॥

इत्येवं समयाचारः कथितश्च वरानने ।।५२।।

हे वरानने! यही समयाचार कहा गया है॥५२॥

गुरोः सकाशाद्यन्मंत्रं नित्यं जपति यो नरः ।
तेनैव मनुना मन्त्री षडंगन्यासमाचरेत् ।।५३।।

गुरु से जो मन्त्र प्राप्त हो, साधक जिसका नित्य जप करता हो, उसी मन्त्र से मन्त्रसाधक को षडंगन्यास आदि करना चाहिये॥५३॥

न्यासं कृत्वा पुनर्मंत्री द्रव्यादीनाभिमंत्रयेत् ।
सप्ताभिमंत्रितं कृत्वा पूतं सर्व भवेद् ध्रुवम् ।।५४।।

न्यास करके मन्त्र साधक द्रव्यादि का पुनः अभिमन्त्रण करे। अभीष्ट मन्त्र से अभिमन्त्रण करे। सात मन्त्रों से अभिमन्त्रित करने से सब कुछ पवित्र हो जाता है। यह निश्चित है॥५४॥

गुरुं शिवं तथा देवीं निवेद्यैवं च भक्षयेत् ।
केवलं शिवरूपोहमात्मानंद विभावयेत् ।।५५।।

गुरु, शिव तथा देवी को निवेदित करके संविद् एवं अन्य द्रव्यों का भक्षण करे। उस समय साधक, मैं केवल शिवरूप ही हूँ ऐसी भावना अपने विषय में करे॥५५॥

जीवः शिवः शिवो जीवः सजीवः केवलः शिवः ।

पाशबद्धः सदा जीवः पाशमुक्तो सदा शिवः ।।५६।।

जीव ही शिव है और शिव ही जीव है। जीव सहित है और शिव केवल स्वतंत्र हैं। जीव सदैव पाश (घृणा, लज्जादि अष्टपाश) से बँधा हुआ है। शिव सदैव पाशमुक्त है।।५६।।

सदा शिवमयो भूत्वा द्रव्यादीनां वरेद्यदि ।

सकिल्विषादि रहितः साक्षाद् ब्रह्ममयो भवेत् ।।५७।।

यदि साधक सदा शिवमय होकर द्रव्य आदि का वरण करे तो वह दोषों से रहित हो, साक्षात् ब्रह्ममय हो जाता है।।५७।।

सदा शिवमयो भूत्वा पञ्चमुद्रादिकं चरेत् ।

सर्व ब्रह्ममयं पश्यन् सर्वदोषैर्न लिप्यते ।।५८।।

यदि साधक सदा शिवमय होकर पञ्चमुद्रादि का आचरण करे तो वह सबको ब्रह्ममय देखता हुआ सब दोषों से (किसी भी दोष से) लिप्त नहीं होता।।५८।।

मोहाद्वा कामलौल्याद्वा यः काश्चिदिह वर्त्तते ।

सोऽधमः साधकानां च नारकी भवति ध्रुवम् ।।५९।।

जो नीच (साधक) मोह से या काम की चपलता से, इस लोक में कुछ भी करता है वह साधकों में निश्चय ही नारकी होता है।।५९।।

कालवर्णनम्

समयो नाम यः कालो मया यः पूर्वसूचितः ।

तमिदानीं प्रवक्ष्यामि जपार्थं श्रृणु सुन्दरि ।।६०।।

हे सुन्दरि! मेरे द्वारा समय नामक जो काल पहले ही जपहेतु सूचित किया गया है। उसे इस समय मैं कहता हूँ। उसे तुम सुनो।।६०।।

प्रातः मध्याह्नयोः कालः प्रदोषश्च तृतीयकः ।

रात्रौ प्रथम यामश्च चतुर्थः परिकीर्त्तितः ।।६१।।

इस दृष्टि से प्रातः और मध्याह्न का समय, तीसरा प्रदोष (सायंकाल) का समय, चौथा रात्रि में पहला प्रहर, कहा गया है।।६१।।

पंचमस्त्वर्धरात्रं च पञ्चकालाः प्रकीर्त्तिताः ।

दिनस्य प्रहरस्यादिकाल प्रथम ईरितः ।।६२।।

अर्धरात्रि का समय पाँचवाँ काल, ये पाँच काल कहे गये हैं। दिन के प्रहर का जो प्रारंभिक (प्रातः) काल है वह पहला कहा गया है।।६२।।

दिनस्य मध्यमकालो द्वितीयः परिकीर्त्तितः ।
सूर्यास्ते रजनीं प्राप्ते प्रदोषोयस्तृतीयकः ।।६३।।

दिन का मध्यम (मध्याह्न) काल द्वितीय काल कहा जाता है तथा सूर्यास्त के पश्चात् रात्रि प्राप्त होने का जो प्रदोषकालीन समय है वह तीसरा कहा गया है।।६३।।

ब्राह्ममुहूर्त्तमवधिमर्धरात्रादनन्तरम् ।
यः कालो षष्टमो ज्ञेयः देवानामपि दुर्लभम् ।।६४।।

आधी रात के पश्चात् ब्राह्ममुहूर्त्त की अवधि तक का जो समय है उसे छठा समय समझना चाहिये। यह छठा समय देवताओं को भी दुर्लभ है।।६४।।

शान्तिकर्म तथा वश्यं स्तम्भनं द्वेषणं तथा ।
उच्चाटणं मारणं च षटकर्माणि श्रृणु प्रिये ।।६५।।

हे प्रिये! शान्तिकर्म तथा वश्य (वशीकरण), स्तम्भन एवं द्वेषण, उच्चाटन और मारण इन छः कर्मों को तुम मुझसे सुनो।।६५।।

शान्त्यर्थं प्रथमो कालो मध्याह्नः द्वेषणे तथा ।
तृतीयः स्तम्भने प्रोक्तः चतुर्थः वश्य कर्मणि ।
उच्चाटने पंचमश्च षष्ठो मारणकर्मणि ।।६६।।

प्रातःकाल का प्रथम समय शान्ति कर्मों के लिये, मध्याह्न काल का द्वितीय समय द्वेषण कर्म के लिये, प्रदोष का तीसरा समय स्तम्भनकर्म में तथा रात्रि के प्रथम प्रहर का चौथा समय वशीकरण हेतु बताया गया है। अर्धरात्रि का पाँचवां समय उच्चाटन में तथा अर्धरात्रि के पश्चात् का छठा समय मारण कर्मों में उपयोगी बताया गया है।।६६।।

आसनवर्णनम्

पद्मासनं शान्तिके प्रोक्तं विकटं द्वेषणे तथा ।।६७।।
स्तम्भने कुक्कुटं विद्याद् वज्रं यद्वश्य कर्माणि ।
मारणे भद्रकं विद्याद् आसनं षट्प्रकीर्तिताः ।।६८।।

आसनों की दृष्टि से शान्तिकर्मों में पद्मासन, द्वेषण कर्म में विकटासन, स्तम्भन में कुक्कुटासन जानना चाहिये। वश्य (वशीकरण)

कर्मों में वज्रासन, और मारण में भद्रकआसन को उपयोगी जाने। इस प्रकार से षट्कर्मों हेतु छः उपयुक्त आसन बताये गये हैं॥६७-६८॥

तत्त्वविचारः

तोयं यत् शान्तिके प्रोक्तमग्निर्वश्ये प्रकीर्तितः ।
पृथिवी स्तम्भने ज्ञेया आकाशं द्वेषणे तथा ॥६९॥
वायुरुच्चाटने प्रोक्तः पुनरग्निर्मारणे मतः ।
यस्य भूतोदये देवि तत्तन्मण्डल संयुते ॥७०॥

जो जल है वही शान्तिक (शान्तिकर्म) में तत्व या भूत कहा गया है। वश्यकर्म में अग्नि कही गई है। पृथिवी तत्त्व को स्तम्भनकर्म में जानना चाहिये तथा आकाश को द्वेषणकर्म में, वायु का उच्चाटनकर्म में तथा पुनः अग्नि का मारण कर्म में उदय बताया गया है। हे देवि! जिस समय जिस भूत (तत्त्व) का उदय हो उसी मण्डल से संयुक्त होना चाहिये॥६९-७०॥

यस्यभूतोदये देवि तत्तन्मण्डल संयुताम् ।
तत्तत्कर्माणि विधानार्थं कुर्वीत निशितात्मना ॥७१॥

जिस समय जिस भूत या तत्व का उदय हो उस-उस तत्त्व से सम्बन्धित मण्डल से संयुक्त हो उन-उन से सम्बद्ध कर्मों का विधान, एकान्त मन से साधक को करना चाहिये।

शीतांशुबीजं प्रथमे सलिलं तु द्वितीयके ।
क्षोणीबीजं तृतीये च व्योमबीजं च चतुर्थकः ॥
पंचमं वायुबीजं च अग्निबीजं तु मारणे ॥७२॥

शीतांशुबीज (अं) पहले, सलिलबीज (वं) दूसरे, पृथिवीबीज (लं) तीसरे, और आकाशबीज (हँ) चौथे, वायुबीजं (यं) का पाँचवें तथा अग्निबीज (रँ) का मारण जैसे छठें कर्म में प्रयोग होता है॥७२॥

आम्नायकथनम्

इत्येकं समयः कालमिष्टपूर्वं प्रकीर्त्तितम् ।
अथेदानीं प्रवक्ष्यामि आम्नाय कथनं पृथक् ॥७३॥

यही अभीष्टकाल पहले मेरे द्वारा समय नाम से कहा गया है। अब मैं अलग से आम्नायों के विषय में कहूँगा ॥७३॥

पूर्वाम्नायस्तदा जातो यदा प्राची दिशिस्थितिः ।
एवमुत्तरं आम्नायः पश्चिमेस्य दिशि स्थितः ।।७४।।

जब पूर्व दिशा में स्थिति होती है तो पूर्वाम्नाय होता है। इसी प्रकार उत्तर दिशा में स्थिति होने पर उत्तरआम्नाय, पश्चिम दिशा में पश्चिमआम्नाय, दक्षिण दिशा में दक्षिणआम्नाय स्थित होता है।।७४।।

मुखमूर्ध्वकृतं देवि यत्प्रोक्तं त्वयि सन्निधौ ।
स ऊर्ध्वाम्नाय कथितो देवानामपि दुर्लभम् ।।७५।।

हे देवि! तुम्हारे समीप मुँह ऊपर करके जो कहा गया वह ऊर्ध्वआम्नाय कहा गया है। यह ऊर्ध्वआम्नाय देवताओं को भी दुर्लभ है।।७५।।

अधोमुखकृतं देवि यत्प्रोक्तो गिरिजेप्रिये ।
अधः आम्नाय इत्युक्तः सत्यं सत्यं वरानने ।।७६।।

हे देवि! हे गिरिजे! हे प्रिये! नीचे मुँह करके मेरे द्वारा जो कहा गया है वही अधः आम्नाय ऐसा कहा गया है। हे श्रेष्ठमुखवाली! यह सत्य है, यही सत्य है।।७६।।

षडाम्नायाश्च कथिता श्चोत्पत्ति क्रमनामतः ।।७७।।

इस प्रकार से पूर्व, उत्तर, पश्चिम, दक्षिण, ऊर्ध्व और अधः ये छः आम्नाय अपनी उत्पत्ति क्रम से संबंधित नामों से कहे गये हैं।।७७।।

आम्नायदेवताकथनम्

श्रीविद्या भेदसहिता बाला च त्रिपुरा च या ।
भुवनेशी अन्नपूर्णा पूर्वाम्नाये प्रकीर्त्तिता ।।७८।।

बाला और त्रिपुरा, भेदों सहित जो श्रीविद्या, भुवनेश्वरी और अन्नपूर्णा नाम वाली देवियाँ हैं, ये पूर्वाम्नाय में कही गयी हैं।।७८।।

बगलामुखी च वशिनी त्वरितस्य फलप्रद ।
महिषमर्दिनी महालक्ष्मी दक्षिणाम्नाये प्रकीर्त्तिताः ।।७९।।

शीघ्र ही अपना फल देने वाली तथा सबको वश में करने वाली बगलामुखी देवी एवं महिषासुर का मर्दन करने वाली महालक्ष्मी दक्षिणाम्नाय में कही गयी हैं।।७९।।

महासरस्वती विद्या तथा वाग्वादिनी च या ।
प्रत्यंगिरा भवानी च पश्चिमोऽऽम्नाय देवता ।।८०।।

जो महासरस्वती, विद्या तथा वाग्वादिनी, प्रत्यंगिरा और भवानी नाम वाली देवियाँ हैं, ये पश्चिमआम्नाय की देवियाँ हैं॥८०॥

कालिकाभेदसहिता तारा भेदैश्च संयुता ।
मातंगी भैरवी छिन्ना तथा धूमावती मता ।
उत्तराम्नाये कथिता शीघ्रकार्यफलप्रदा ।।८१।।

अपने भेदों के सहित काली, अपने भेदों के सहित तारा, मातंगी, भैरवी, छिन्ना (छिन्नमस्तिका) तथा धूमावती देवियाँ उत्तरआम्नाय में वर्णित हैं। ये शीघ्र ही साधकों के कार्य को फलप्रदान करने वाली हैं॥८१॥

समस्त भेद सहिता कालिकायाः प्रकीर्त्तिता ।
द्वाविंशत्यक्षरीनाम उत्तराम्नाय संज्ञिका ।।८२।।

अपने सभी भेदों सहित कालिका की बाईस अक्षरों वाली विद्या उत्तराम्नाय संज्ञक ही है॥८२॥

परा प्रसादो मन्त्रश्च ऊर्ध्वाम्नाय प्रकीर्त्तितः ।।८३।।

परा और प्रसाद मन्त्र ऊर्ध्वाम्नाय के कहे गये हैं॥८३॥

वागीशादयो विद्या अधोऽऽम्नाये प्रकीर्त्तिताः ।
ऊर्ध्वाम्नायो अधश्चैव केवलं मोक्षदो भवेत् ।।८४।।

वागीशादि मन्त्र अधोम्नाय के कहे गये हैं। ऊर्ध्वाम्नाय तथा अधोम्नाय केवल मोक्ष ही प्रदान करते हैं॥८४॥

धर्मार्थकाममोक्षार्थाः आम्नायान्ये प्रकीर्त्तिताः ।
यथोक्ता विधिनोक्ता कृत्वा शुभफलमाप्नुयात् ।।८५।।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी पुरुषार्थों की प्राप्ति हेतु पूर्व, उत्तर, पश्चिम एवं दक्षिण आम्नाय कहे गये हैं। जिनका यथोक्तविधि से आचरण करके साधक शुभफल प्राप्त करता है॥८५॥

आम्नायविधानवर्णनम्

पूर्वाम्नायादि सर्वेषां विधानं श्रृणु सुन्दरि ।
कृत्वा येनाशु लभते फलं तदुत्तमोत्तमम् ।।८६।।

हे सुन्दरि! पूर्वाम्नाय आदि सभी आम्नायों का विधान, तुम मुझसे सुनो। जिनको करके साधक, शीघ्र ही उनके उत्तमोत्तमफल को प्राप्त करता है॥८६॥

षट्कर्म फलदा नृणां सर्वाम्तायाः प्रकीर्त्तिताः ।
उत्तराम्नायो देवेशि तेषामाशु फलप्रदः ।।८७।।

हे देवेशि! मनुष्यों को षट्कर्मों का फल प्रदान करने वाले सभी आम्नाय ही कहे गये हैं। किन्तु उनमें उत्तराम्नाय शीघ्रफल देने वाला है।।८७।।

स्नातः शुक्लाम्बरो वीरः शुद्धवेशधरस्तथा ।
देवपूजारतो नित्यं तथा विधिचरेद्दिवा ।।८८।।

वीर साधक स्नान करके, श्वेतवस्त्र धारण कर, शुद्ध वेश (चन्दनादि सुशोभित वेश) धारी हो, नित्य देवपूजा में लगा हुआ दिन में विधिपूर्वक विचरण करे।।८८।।

नक्तं द्रव्यादि सर्वेषां यथालाभे चोत्तमम् ।
विधिवत् क्रियते शक्त्या सह सर्वं फलं भवेत् ।।८९।।

तथा रात्रि में यथोचित मात्रा में उपलब्ध सभी द्रव्यादि से शक्ति के साथ विधिवत् क्रिया करने से वह सभी फल प्राप्त होते हैं।।८९।।

मालावर्णनम्

पूर्वाम्नायादि सर्वेषां मालां श्रृणु वदाम्यहम् ।
जहवा येनाशु फलं लभते देवैश्च दुर्लभम् ।।९०।।

अब तुम पूर्व आदि सभी आम्नायों में प्रयोग की जाने वाली माला के विषय में सुनो जिससे जप करने पर, देवताओं को भी दुर्लभफल शीघ्र प्राप्त होता है।।९०।।

अक्षमाला प्रथमतो मातृकावर्णरूपिणी ।
अथमुक्तामयी वापि मोक्षफलप्रदायिनी ।।९१।।

सर्वप्रथम मातृका के वर्णों के स्वरूप वाली अक्षमाला है। तत्पश्चात् मोती की माला भी मोक्षफलप्रदान करने वाली होती है।।९१।।

सर्वसिद्धिकरा माला सर्वराजवंशकरी ।
प्रवालमालावश्यार्थं सर्वकार्य्यफलप्रदा ।।९२।।

मूँगे की माला, सभी प्रकार की सिद्धि देने वाली तथा सभी राजाओं को वश में करने वाली, वशीकरण सम्बन्धी सभी कार्यों का फलप्रदान करने वाली होती है।।९२।।

माणिक्यरचितामाला साम्राज्यफल दायिनी ।
पुत्रजीवकयामाला लक्ष्मीं विद्याप्रदायिनी ।।९३।।

माणिक्य की बनी हुई माला साम्राज्य का फलप्रदान करने वाली होती है। पुत्रजीवा की माला लक्ष्मी और विद्या प्रदान करने वाली होती है॥९३॥

पद्माक्षमाला रचिता यशोलक्ष्मीश्चजायते ।
स्वर्णरौप्यमयीमाला स्फाटिकी सर्वकामदा ।।९४।।

पद्माक्ष (कमलगट्टे) से बनी माला से जप करने से यश एवं लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। सोने, चाँदी और स्फटिक से बनी मालाएँ सभी कामनाओं की पूर्त्ति करने वाली होती हैं॥९४॥

रक्तचंदनजामाला वश्यभोग्यप्रदामता ।
रुद्राक्षनिर्मितामाला सर्वकामफलप्रदा ।।९५।।

रक्त (लाल) चन्दन से बनी माला, वशीकरण सम्बन्धी और भोग्य को प्रदान करने वाली कही गयी है। रुद्राक्ष की बनी माला सभी कर्मों का फलप्रदान करने वाली होती है॥९५॥

सर्वमाला प्रपूज्याथ चंदनादि प्रलेपितां ।
समाश्रित्य जपेत् विद्यां यथोक्तफलमश्नुते ।।९६।।

उपर्युक्त सभी मालाओं का चन्दनादि के प्रलेप से पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् उसका आश्रय ले, यदि साधक विद्या (मन्त्र) का जप करे तो उसे यथोक्तफल की प्राप्ति होती है॥९६॥

एतामालाश्च सुभगाः पंचाम्नायेषु पूजिताः ।
उत्तराम्नायेया माला गिरिजे ते वदाम्यहम् ।।९७।।

ये मालायें पाँचों आम्नायों में पूजित और सुन्दर होती हैं। हे गिरिजे! अब मैं उत्तर आम्नाय में प्रयुक्त माला के सम्बन्ध में तुमसे कहता हूँ॥९७॥

अथ वर्णमयी माला सर्वोत्कृष्टां मतावया ।
महाशंखमयीवाथ वांछितार्थफलप्रदा ।।९८।।

वर्णमयी माला सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है। महाशंख (अस्थि) की बनी माला वांछित फल प्रदान करने वाली होती है॥९८॥

स्फटिकौ रचिता लाभ रुद्राक्षं फल संभवा ।
स्वर्णादि रत्नपर्यन्त रचिता फलदा मता ।।९९।।

स्फटिकमणि के दानों या रुद्राक्ष के फलों से अथवा स्वर्ण से, विविध रत्नों तक से बनी हुई मालायें विशेष फलदायिनी कही गयी हैं॥९९॥

गुंजामाला तथा कार्या वांछितार्थफलप्रदा ।
उदुम्बरफलस्यैव सूक्ष्मस्य च कृतावया ।
इत्यादि मालां देवेशि कुर्वीता विधिवन्नरः ।।१००।।

गुंजा (घुंघुची) तथा गूलर के छोटे फलों से बनायी गई मालायें वांछित प्रयोजन हेतु फलदायिनी होती हैं। हे देवेशि! इन मालाओं का साधक को विधिवत् निर्माण करना चाहिये॥१००॥

यन्त्रवर्णनम्

अथेदानीं प्रवक्ष्यामि यन्त्रस्य विधिमुत्तमम् ।।१०१।।
भूर्जेषद् वर्षपर्यन्तम् ताम्रे द्वादशमेव च ।
रुप्ये षष्टिवर्षं च महाशंखे सहस्रकम् ।।१०२।।

अब यन्त्र की उत्तम विधि को मैं कहूँगा॥१०१॥ भूर्जपत्र पर निर्मित यन्त्र छः वर्षों तक, ताँबे पर बारह वर्षों तक, चाँदी पर साठ वर्षों तक, महाशंख (कपाल) पर बना यन्त्र, हजार वर्षों तक फलदायक होता है॥१०२॥

स्वर्णस्फटिकेचैव वर्षसंख्या न विद्यते ।
सहसाकार्यसिद्ध्यर्थं स्थापयेत् स्फाटिकोपरि ।।१०३।।

स्वर्ण और स्फटिक पर बने यन्त्रों के लिये कोई समयसीमा नहीं है। अकस्मात् कार्य सिद्धि हेतु स्फटिक पर यन्त्र की स्थापना करनी चाहिये॥१०३॥

यथोक्त विधिनालिख्य यथोक्तं पूजनं सदा ।
वांछितं लभते मन्त्री नान्यथा जायते फलम् ।।१०४।।

बताई गई विधि से, बताये हुए पूजन को करके ही मन्त्रजापक वांछितफल को प्राप्त करता है। अन्यथा उसे जप का फल नहीं प्राप्त होता॥१०४॥

आसनवर्णनम्

आसनानि प्रवक्ष्यामि शृणु देवि वदाम्यहम् ।
मेषासनं तु वश्यार्थे आकर्षे व्याघ्रचर्म च ।।१०५।।

शान्तौ मृगाजिनं शस्तं माक्षे वाव्याघ्रचर्मणि।
गोचर्म स्तम्भने देवि स्तम्भने च गजाजिनम् ।।१०६।।

हे देवि! मैं तुमसे साधना में प्रयुक्त आसनों के विषय में कहूँगा। मैं इस सम्ब्ध में जो बोलता हूँ, तुम उसे सुनो–

भेड़ के चमड़े से बना आसन वश्य (वशीकरण) सम्बन्धी कर्मों में, बाघ के चमड़े का आकर्षण कर्मों में, मृगचर्म का शान्तिकर्म में और मोक्षसाधन हेतु बाघ के चमड़े का आसन प्रशस्त बताया गया है। हे देवि!, स्तम्भन कार्यों में गौ (बैल) का चमड़ा तथा इसी में हाथी का चमड़ा भी उपर्युक्त बताया गया है॥१०५-१०६॥

चर्मोष्ट्रस्यतु उच्चाटे विद्वेषेश्वानचर्म च ।
मारणे महिषं विद्यात् कर्मोदिष्टं तु आचरेत् ।।१०७।।

ऊँट के चमड़े का प्रयोग उच्चाटन में, कुत्ते के चमड़े का विद्वेषण में, भैंस के चमड़े का मारण में उपयोग जानना चाहिये। इस प्रकार कार्य के उद्देश्य को बना कर ही इनका प्रयोग करना चाहिये॥१०७॥

सर्वकर्मप्रदं देवि वस्त्र पट्टासनं तथा ।
ऊर्णासनं कम्बलाद्यं सर्वकर्मसु पूजितम् ।।१०८।।

हे देवि! सभी कर्मों में सिद्धि देने वाला रेशमीवस्त्र का आसन होता है। ऊन का बना कम्बल आदि आसन सभी कामों में पूजनीय होता है॥१०८॥

दुःखदारिद्रकरणं विद्यात् काष्ठासनं प्रिये ।
स्वर्णादिरत्नजं देवि महासौभाग्यवर्धनम् ।।१०९।।

हे प्रिये! काष्ठ का आसन दुःख और दरिद्रता करने वाला जानना चाहिये। हे देवि! स्वर्ण आदि रत्नों के बने आसन महान् सौभाग्य बढ़ाने वाले होते हैं॥१०९॥

शृणु देवि विशेषेण चोत्तराम्नायमासनम् ।
येनाशु लभते पुण्यं फलं देवैश्च दुर्लभम् ।।११०।।

हे देवि! विशेषकर उत्तर आम्नाय के आसन के विषय में सुनो, जिससे शीघ्र ही देवताओं को भी दुर्लभ पुण्यफल प्राप्त होता है॥११०॥

शवासनं तु सुभगे मृतं मुण्डासनं तथा ।
श्मशानवासनं वापि भगस्पृश्यासनं तथा ।।१११।।

हे सुभगे! शवासन, मुर्दे का मुण्डासन, श्मशानवस्त्र (कफन) का आसन या योनिस्पर्शीवस्त्र का आसन।

सादर्शासनकं वापि मैथुनासनकं तथा ।

कृत मैथुनकं वापि वांछितार्थ फलप्रदम् ।।११२।।

आदर्श (दर्पण) युक्त आसन, मैथुन काल में प्रयुक्त आसन या मैथुनकालिक वस्त्र का आसन, साधक को वांछित फल प्रदान करने वाला होता है।।१११-११२।।

जपस्थानवर्णनम्

जपस्थानादि देवेशि सिद्धितीर्थानि यानि च ।

सिद्धपीठे सिद्धक्षेत्रे गिरौ देवालये तथा ।।११३।।

हे देवेशि! अब जपस्थानादि की दृष्टि से जो सिद्धिदायक तीर्थ हैं, उनके विषय में सुनो।

सिद्धपीठ, सिद्धक्षेत्र, पर्वत, देवालय

वटवृक्षे बिल्ववृक्षे रम्भायाः विपिनेपि वा ।

नद्यादि तीरे वा कुर्याद्गुहा पर्वत मस्तके ।।११४।।

वट के वृक्ष, बेलवृक्ष या केले के वन, नदी-सरोवर आदि के तट, किसी गुफा या पर्वत के मस्तक को जप का स्थान करना (बनाना) चाहिये।।११३-११४।।

श्रृणु देवि विशेषेण उत्तराम्नाय हेतवे ।

वेश्या गृहे श्मशाने वागत्वा मैथुनमाचरेत् ।।११५।।

हे देवि! सुनो, उत्तर आम्नाय की साधना हेतु विशेष कर वेश्या के घर में अथवा श्मशान में जाकर मैथुन करना चाहिये। (यहाँ साधनापद्धति संकेतिक है, विशेष गुरु से समझें)।।११५।।

ततो जपादिकं देवि कृत्वाशु लभते फलम् ।

अथवा स्वगृहे रात्रौ भक्तिमान् यः समाचरेत् ।

स प्राप्नोति फलं सर्वं चिन्ताभयविवर्जितः ।।११६।।

तत्पश्चात् हे देवि! जप आदिक पूजाकर्म करके साधक शीघ्र ही फल प्राप्त करता है अथवा जो साधक भक्तिपूर्वक रात्रि में अपने घर में ही उपर्युक्त साधना करता है। वह चिन्ता और भय से रहित हो सभी फलों को प्राप्त कर लेता है।।११६।।

भगपूजावर्णनम्

अथेदानीं प्रवक्ष्यामि भगपूजां करोति यः ।।११७।।
तदातु भगमध्ये तु चिन्तये ब्रह्मरूपिणी ।
शिवो भूत्वा स्मरेद्देहे स्वात्मानं च विभावयेत् ।।११८।।

अब मैं आगे कहता हूँ, जो साधक भगपूजा करे वह उस समय अपने को शिवरूप मानते हुए स्वयं शिव हो, साधिका के भग के मध्य में ब्रह्मस्वरूपिणी इष्ट देवी का ध्यान करता हुआ स्मरण करे।।११७-११८।।

शक्तिः सा तन्मयी विद्या तदपि मैथुनं चरेत् ।
यथोक्तं कुरुते देवि प्राप्यते परमं पदम् ।।११९।।

वह हे देवि! वह शक्ति भी तन्मयी अपने को उसी भाँति ब्रह्मस्वरूपिणी तथा साधक को शिवस्वरूप समझे तभी मैथुन करना चाहिये। जो साधक कहे अनुसार साधना करता है, वह परमपद प्राप्त करता है।।११९।।

मन्त्रभेदवर्णनम्

यानि कल्पितमन्त्राणि कथितानि वरानने ।
ज्ञातव्यानि द्विधा देवि सर्वतन्त्रेषु निश्चितम् ।।१२०।।

हे सुन्दरमुखवाली देवि! सभी तन्त्रों में जो भी मन्त्र बताये गये हैं। उन्हें निश्चित रूप से दो प्रकार का जानना चाहिये।।१२०।।

मन्त्राः केचित्प्रकाश्यन्ते काश्चिद्विद्या प्रकीर्त्तिताः ।
पुन्नामा देवता मन्त्राः विद्यास्त्रीनामतः स्मृता ।।१२१।।

मन्त्रों में कोई मन्त्र कहे जाते हैं तो कुछ विद्या कहे गये हैं। पुरुषनामधारी देवताओं से सम्बन्धित मन्त्र, मन्त्र कहे जाते हैं तो स्त्री नाम वाले देवताओं से संबंधित मन्त्र, विद्या स्मरण किये गये हैं।।१२१।।

नपुंसका भवात्मन्ये मन्त्राः सर्वे समीरिताः ।
पुमांसो हुंफडंता स्युर्द्विठान्ताः स्युस्त्रियोमताः ।।१२२।।

अन्य सभी मन्त्र नपुंसक कहे गये हैं। पुरुष मन्त्र हुँ फट् से समाप्त होते हैं तो दो ठकार ठः ठः से समाप्त होने वाले मन्त्र स्त्री मन्त्र (विद्या) माने गये हैं।।१२२।।

योगः पल्लव इत्येते कथिताः षट्सु कर्मसु ।
नामवर्णाश्च विधिना मन्त्राणान्तरितास्तथा ।।१२३।।

ये सब षट् कर्मों के लिये मन्त्रों के साथ योगपल्लव कहे गये हैं। नाम एवं वर्णों की विधि से मन्त्रों में अन्तरित किये जाते हैं। जोड़े जाते हैं॥१२३॥

नपुन्सकाः नमोऽन्ताः स्युः त्रिविधा जातिभिः पुनः ।
ग्रथनं च विदर्भश्च संपुटोरोधनं तथा ।।१२४।।

नपुंसक मन्त्र नमः से अन्त होने वाले होते हैं। ये पुनः जाति के आधार पर ग्रथन, विदर्भ, संपुटोरोधन तीन प्रकार के बताये गये हैं॥१२४॥

कुर्यात्तद् ग्रथनं नाम शान्ति कर्माणि शस्यते ।
मन्त्रार्णाद्वयमध्यस्थं साध्यनामाक्षरं लिखेत् ।।१२५।।

इनमें ग्रथननामक संस्कार शान्तिकर्म में करना चाहिये। यह उसी में प्रशस्त है। इसमें दो मन्त्राक्षरों के मध्य में साध्य के नाम के अक्षरों को लिखे॥१२५॥

विदर्भ एष विज्ञेयो वश्ये कर्माणि शस्यते ।
आदावन्ते च मन्त्रा स्यान्नाम्रो सौ संपुटः स्मृतः ।।१२६।।

मन्त्र के आदि और अन्त में नाम से सम्पुट करने पर विदर्भ जाति जानना चाहिये। यह वश्य कर्म के लिये प्रशस्त है॥१२६॥

प्रशस्तं स्तम्भने देवि यथोक्तं क्रियते यदि ।
नाम्रः आद्यन्त मध्यमेषु मन्त्र सम्पुटोरोधनं मतः ।।१२७।।

हे देवि! प्रयोग यदि बताये अनुसार किया जाय तो स्तम्भन कार्य हेतु रोधन प्रशस्त है। नाम के आदि अन्त और मध्य मन्त्र का संपुटोरोधन माना गया है॥१२७॥

विद्वेषण विधानेषु प्रशस्तमिदमीरितः ।
मन्त्रस्यान्ते भवेन्नाम योगचोच्चाटने मतः ।।१२८।।
अन्ते नाम्नो भवेन्मन्त्रः पल्लवो मारणे मतः ।।१२९।।

यह विद्वेषण सम्बन्धी विधानों में प्रशस्त कहा गया है। मन्त्र के अन्त में नाम होने से यह योग बनता है। यह उच्चाटन कर्म में कहा गया है॥१२८॥ मन्त्र के अन्त में साध्य का नाम होने पर जो पल्लव बनता है वह मारणकर्म हेतु प्रशस्त माना गया है॥१२९॥

आगतः शिव वक्राच्च गतश्चगिरिजामुखे ।
तेन आगम तंत्राणि कथितानि वरानने ।।१३०।।

हे श्रेष्ठ मुखवाली! तन्त्र, शिवमुख से आकर गिरिजा (पार्वती) के मुख (मस्तिष्क) में प्रवेश किये हैं। इसीलिये तन्त्र आगम भी कहे जाते हैं।।१३०।।

आचारवर्णनम्

यानि कानि च शास्त्राणि कथितान्यागमस्य च ।
तानि तानि प्रकाश्यन्ते कौलाचाराणि सुन्दरी ।।१३१।।

हे सुन्दरि! आगम सम्बन्धी जो-जो शास्त्र कहे गये हैं, वे सभी कौलाचार कहे जाते हैं।।१३१।।

आचारः कथितो यस्तु मया च कृतवान् भुवि ।
तस्याचारस्य नाम्ना च कुलाचारः प्रकीर्त्तिताः ।।१३२।।

मेरे द्वारा जो आचार पृथिवी पर कहा गया है और किया गया उसी आचार को कुलाचार नाम से कहा जाता है।।१३२।।

आचारो द्विविधो देवि वाम दक्षिण भेदतः ।
पंचमुद्रादि संयुक्तो वामाचारः प्रकीर्त्तितः ।।१३३।।

हे देवि! यह आचार (कुलाचार) भी वाम और दक्षिण के भेद से दो प्रकार का होता है। मुद्रादि पंचमकारों से संयुक्त होने पर यह वामाचार कहा जाता है।।१३३।।

पंचमुद्रादिरहितो दक्षिणाचारसंज्ञकः ।
नाना तन्त्राणि देवेशि यामलानि पृथक् पृथक् ।।१३४।।

पंचमुद्रादि रहित होने पर यह आचार दक्षिणाचार संज्ञक होता है।।१३४।।

डामराणि च सर्वाणि तंत्राणां हृदयानि च ।
समासतः प्रवक्ष्यामि श्रृणु देवि वदाम्यहम् ।।१३५।।

हे देवेशि! अनेक तन्त्र और अलग-अलग यामल तथा डामर होते हैं। हे देवि! मैं संक्षेप में सभी तन्त्रों के हृदयों (रहस्यों) को कहूँगा। अब मैं तुमसे बोलता हूँ, तुम उन्हें सुनो।।१३५।।

चतुषष्ठीनि तन्त्राणि यामलान्यष्टसुन्दरी ।
डामराणि त्रीणिस्युः कथयामि शुभानने ।।१३६।।

हे सुन्दरि! हे शुभ मुखवाली! तन्त्र चौंसठ, यामल आठ, डामर तीन होते हैं। मैं उन्हें तुमसे कहता हूँ॥१३६॥

तन्त्राणि बहुधा देवि मयापूर्वं प्रकाशितम् ।
यामलान्यत्र वक्ष्यामि डामराणि तथा पुनः ।।१३७।।

हे देवि! मेरे द्वारा पहले बहुत से तन्त्र प्रकाशित किये गये हैं। कहे गये हैं। अब मैं अन्यत्र यामलों को तथा डामरों को कहूँगा॥१३७॥

विष्णुब्रह्मशिवानां च यामलानि पृथक् पृथक् ।
शक्तेर्गणपतेश्चैव कार्त्तिकेयस्य पृथक् पृथक् ।
सूर्यश्चन्द्रमसोश्चैव कथितानि वरानने ।।१३८।।

हे श्रेष्ठ मुख वाली! विष्णु, ब्रह्मा, शिव, शक्ति, गणपति, कार्त्तिकेय, सूर्य और चन्द्रमा इन आठ देवताओं के अलग-अलग आठ यामलग्रन्थ कहे गये हैं॥१३८॥

उड्डीशडामरं नाम भूतडामरकं तथा ।
शक्तिडामरकं नाम डामराणि च पार्वती ।।१३९।।

हे पार्वती! उड्डीशडामर, भूतडामर तथा शक्तिडामर नाम वाले तीन डामरग्रन्थ कहे गये हैं॥१३९॥

कथंचाद्य प्रवक्ष्यामि तन्त्राणीतः वरानने ।
चतुषष्टितन्त्राणि विख्यातं वामकेश्वरे ।।१४०।।

इनके अतिरिक्त चौंसठ तन्त्र वाम तन्त्र में पहले से ही प्रसिद्ध हैं। इसीलिये आज मैं तन्त्रों को कैसे कहूँगा॥१४०॥

तस्मिन्नोक्तानि तन्त्रेषु कुलाचार गुरुं श्रृणु ।।१४१।।

उन तन्त्रों में कहे गये कुलाचार के गुरु लक्षण को सुनो॥१४१॥

गुरुलक्षणम्

आगमाचार निपुणः सर्वशास्त्रभृतांवरः ।
सुवेषधारी दक्षश्च सत्यवक्ता प्रियं वचः ।
एवं लक्षण संयुक्तश्चागमस्य गुरुमतः ।।१४२।।

कुलाचारमार्ग का गुरु, आगमशास्त्रों में वर्णित आचारों में निपुण सभी शास्त्रधारियों (शास्त्रज्ञों) में श्रेष्ठ, सुन्दरवेश धारण करने वाला, दक्ष, सत्यवक्ता और प्रियवादी होता है। आगमशास्त्र का गुरु इन लक्षणों से युक्त बताया गया है॥१४२॥

शिष्यलक्षणम्

शिष्योऽपि गुणैर्युक्तो गुरुभक्तिरतः सदा ।
धर्मकर्मादि युक्तश्च गुरुमन्त्रपरायणः ।।१४३।।
सत्यबुद्धि गुरौ मन्त्रे देवपूजन तत्परः ।
गुरुणोदिष्ट मार्गेषु कृतबुद्धिरुदारधिः ।
एवं लक्षणसंयुक्ताः शिष्यश्चापि परीक्षकः ।।१४४।।

शिष्य भी गुणों से युक्त, गुरुभक्ति में सदैव लगा हुआ, धर्म-कर्म से युक्त, गुरु द्वारा मन्त्र में परायण, गुरु और मन्त्र में सत्यबुद्धि रखने वाला, देवपूजन में तत्पर, गुरु के द्वारा निर्दिष्टमार्ग में निष्ठावान्, उदारबुद्धि इस प्रकार के लक्षणों से युक्त होना चाहिये॥१४४॥

मायानिन्दादिरहितश्चास्यादि विवर्जितः ।
समयाचार सम्पन्नो धनाढ्यश्च क्रियापरः ।।१४५।।

माया और निन्दादि दोषों, आलस्य से रहित और समयाचार से सम्पन्न, धनाढ्य, व्यवहारिक क्रियाओं में तत्पर, परीक्षक होना चाहिये॥१४५॥

पूजाद्रव्यकथनम्

श्री सदाशिव उवाच

पूजा द्रव्यं प्रवक्ष्यामि पूजकाभीष्ट सिद्धये ।
तज्ज्ञात्वा मन्त्रवित्सम्यक् फलमाप्नोति पूजने ।।१४६।।

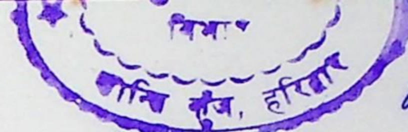
श्री सदाशिव बोले– अब मैं पूजकों (साधकों) को अभीष्ट फल प्रदान करने वाले पूजा के द्रव्यों के विषय में कहूँगा। जिन्हें जान कर मन्त्रवेत्ता साधक पूजन में सम्यक् फल प्राप्त करता है॥१४६॥

मद्यमांस तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च ।
मकारा पंचसुभगे सांगकर्म सुहेतवे ।।१४७।।

हे सुभगे! कर्म की अंगों के सहित पूर्णता हेतु मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन ये पाँच मकारात्मक द्रव्य कहे गये हैं॥१४७॥

या सुरा सर्वतन्त्रेषु कथिताभुवि दुर्लभा ।
तथा नाम भवेद्देवि तीर्थं यज्ज्ञान मुक्तिदम् ।।१४८।।

हे देवि! सभी तन्त्रों में जो सुरा कही गई है वह पृथिवी पर दुर्लभ है। उस प्रकार सुरा का नाम तीर्थ होता है। जो ज्ञान और मुक्ति दोनों ही देने वाली है॥१४८॥



पशूनां भक्ष्य योग्यानां मांसं देवि विनिर्मितम् ।
देवि मन्त्रां च विधिवत् तस्योक्ता शुद्धिसत्तमा ।।१४९।।

हे देवि! खाने योग्य पशुओं का मांस भक्ष्य बनाया गया है। देवि! मन्त्र साधना में इसे विधिवत् शुद्धि कहा गया है।।१४९।।

मांसभक्षणे कथिता ये मत्स्याश्चवरानने ।
ते रहस्ये मया प्रोक्ता मीना सिद्धिश्चदायकाः ।।१५०।।

हे श्रेष्ठ मुखवाली! मांसभक्षण के प्रसङ्ग में जिन मत्स्यों का उल्लेख हुआ है वे ही मेरे द्वारा रहस्यग्रन्थों में सिद्धि देने वाले मीन कहे गये हैं।।१५०।।

गुडादिमध्ये निःक्षिप्य तत्वज्ञान विवर्धिनी ।
मुद्रा तां विधिनाप्राहुश्चणकादीश्च भर्जितान् ।।१५१।।
या रोटिका पोलिका च भक्षेषु कथिता शुभाः ।
तस्याः नाम भवेद्देवि मुद्रा मुक्ति प्रदायिनी ।।१५२।।

हे देवि! गुड़ आदि मिलाकर भुने हुए चने आदि के चर्वण आदि को मुद्रा कहा जाता है, जो तत्वज्ञान देने वाला है। भोज्यपदार्थों में जो रोटी, चावल, (पोलिका) कही गई है वह मुक्ति प्रदान करने वाली मुद्रा होती है।।१५१-१५२।।

भगलिंगस्य योगेन मैथुनं यद्भवेद् प्रिये ।
तस्य नाम भवेद्देवि पञ्चमं परिकीर्त्तितम् ।।१५३।।

हे प्रिये! हे देवि! भग-लिंग के संयोग से जो मैथुनकर्म होता है उसी का नाम शास्त्र में पंचम कहा गया है।।१५३।।

प्रथमं तु भवेन्मद्ये मांसे चापि द्वितीयकम् ।
मत्स्येस्वपि तृतीयं स्यान्नामे मुद्रा चतुर्थकम् ।।१५४।।
पंचमे पंचमे विद्यात् पंचैते नामतः स्मृताः ।
पंचानां पंचनामानि मकाराणि वरानने ।।१५५।।

हे श्रेष्ठ मुखवाली! प्रथम तत्व मद्य में, द्वितीय मांस में, तृतीय मत्स्य में, चतुर्थ मुद्रा में, पंचम (मैथुन) में जानें। ये पाँचतत्वों के पांच नाम मकार से प्रारम्भ होने के कारण ये पंचमकार नाम से स्मरण किये गये हैं।।१५४-१५५।।

प्रथमस्य द्वितीयस्य तृतीयचतुर्थयोः ।
पंचमस्य तथादेवि मकाराः पंचदुर्लभाः ।।१५६।।

हे देवि! प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम के पंचमकार दुर्लभ हैं॥१५६॥

पंचमं देवि सर्वेषु ममप्राणे भवेत्प्रियो ।
पंचमेन विना देवि चंडी मंत्रं वृथा जपेत् ।।१५७।।

हे देवि! इन सब में पंचम मुझे प्राणप्रिय होता है। हे देवि! पंचम के बिना चंडी जप व्यर्थ हो जाता है॥१५७॥

यदि सर्वमकारेषु भ्रान्तिं च कुरुते प्रिये ।
तस्यसिद्धिः कथं देवि शक्ति मंत्र जपेत्कथम् ।।१५८।।

हे प्रिये! यदि कोई इन सभी मकारों में भ्रान्ति रखता है तो उसे सिद्धि कैसे होगी? वह शक्तिमन्त्र कैसे जपेगा? अर्थात् उसका शक्तिमंत्र जप सिद्धिरहित और व्यर्थ होता है॥१५८॥

पंचमं विना देवि भुक्ति मुक्ति कथं भवेत् ।
पंचमं विना देवि कथं च फलदा भवेत् ।।१५९।।

हे देवि! पंचम के बिना भोग और मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी? पंचम के बिना साधना कैसे फलदायिनी हो सकती है? अर्थात् कथमपि नहीं हो सकती॥१५९॥

पंचमेन विना देवि यदानंदो भवेद् ध्रुवम् ।
तन्नाममोक्षो विदुषामबुधानां च पातकम् ।।१६०।।

हे देवि! पंचम के बिना जो आनन्द होता है निश्चय ही वह विद्वानों के लिंए मोक्ष न होकर वह मूर्खों का पातककर्म ही होता है॥१६०॥

आनन्दं परमं ब्रह्म मकारानन्द सूचकम् ।
तया विशेषतो देवि पंचमं परिकीर्त्तितम् ।।१६१।।

हे देवि! उपर्युक्त मकारों का आनन्द ही परमब्रह्म के आनन्द का सूचक है। उनमें भी विशेष रूप से पंचम तत्त्व कहा गया है॥१६१॥

भगस्य स्मरणोपुण्यं भगस्य दर्शने तथा ।
भगस्य पूजने पुण्यं भगस्य पंचमे तथा ।।१६२।।

भग का स्मरण और उसका दर्शन पुण्य है। भग का पूजन एवं भग का पंचमकर्म (मैथुन) पुण्य है॥१६२॥

भगस्य पंचमे देवि यन्सुखमप्यजायते ।
न तत्सुखं जपे देवि दानैस्तपसा तथा ।।१६३।।

हे देवि! भग के पंचम में जो सुख होता है वह सुख न जप में होता है, न दान में और न तपस्या में ही होता है॥१६३॥

पंचमस्य कृते देवि यत्पुण्यं भुवि जायते ।
न तत् पुण्यं समं देवि कोटितीर्थादि दर्शनम् ।।१६४।।

हे देवि! पंचम के करने से पृथिवी पर जो पुण्य होता है। उस पुण्य के समान पुण्य, करोड़ों तीर्थादि के दर्शन का भी नहीं होता॥१६४॥

जप होमस्तथा दानं भिक्षायागादि कल्पना ।
कृतं पंचमं भक्तस्य कलानार्हंति षोडशी ।।१६५।।

जप, होम, दान, दीक्षा, याग आदि की कल्पनाएँ (विधान), जिस भक्त ने पंचमकर्म कर लिये उसके फल की सोलहवीं कला की भी समानता नहीं कर सकतीं॥१६५॥

त्रयोदशर्षाद्वा हि पंचविंशति वार्षिकी ।
अप्रसूना विशेषेण पंचमार्हा भवेत्प्रिये ।।१६६।।

हे प्रिये! तेरह वर्ष से पच्चीस वर्ष तक की विशेषकर जो अप्रसूना हो अर्थात् जिसका मासिक धर्म न हुआ हो ऐसी शक्ति, विशेष रूप से पंचम के योग्य होती है॥१६६॥

अप्रसूता विशेषेण प्रसूतावा प्रसूतिका ।
अवश्यं पंचमं कुर्यात्शक्ति मात्रं महेश्वरि ।।१६७।।

विशेष कर बिना बच्चे वाली होती है, अन्यथा बच्चों को पैदा की हुई या करने वाली भी हो सकती है। हे महेश्वरि! शक्ति भाव से ही पंचमकर्म अवश्य करना चाहिये॥१६७॥

पंचमे च कृते देवि यत्कुर्यात् पूजनादिकम् ।
तदक्षय लभते पुण्यं नात्रकार्या विचारणा ।।१६८।।

हे देवि! पंचम को करके जो पूजन आदि करता है, वह अक्षय पुण्य प्राप्त करता है। इसमें विचार (सन्देह) नहीं करना चाहिये॥१६८॥

गुरुं च तोषयेत्तत्र तत्पत्नीं वा सुतादि वा ।
नानाभरणवस्त्राद्यैस्तथा द्रव्येण सुन्दरी ।।१६९।।

हे सुन्दरि! अनेक प्रकार के वस्त्रादि आभूषणों एवं द्रव्यों से गुरु, तत्पश्चात् गुरुपत्नी या गुरु के पुत्रादि को सन्तुष्ट करे॥१६९॥

पंचमार्था यथा शक्तिस्तस्यां कुर्याच्च पंचमम् ।
तस्यास्तोत्रं प्रकुर्याच्च विशेषेण शृणु प्रिये ।।१७०।।

हे प्रिये! पंचम के निमित्त यथाशक्ति उनका पूजन कर पंचमकर्म करे और उसकी स्तुति करे। तत्सम्बन्धी स्तोत्र को विशेष रूप से कहूँगा। तुम उसे सुनो॥१७०॥

द्रव्येण भूषणैश्चैव वसनालिंगनादिभिः ।
स्नानार्थं देवतायाश्च रहस्यं परमं शृणु ।।१७१।।

द्रव्य, आभूषण, वस्त्र तथा आलिंगन आदि द्वारा उसकी स्तुति (पूजा) की जानी चाहिये। अब देवता के स्नान के निमित्त परम रहस्य मैं तुमसे कहूँगा। तुम उसे सुनो॥१७१॥

येन स्नान कृते देवि देवता सुप्रसीदति ।
रात्रौ पंचम काजेषु कृत्वा पंचममुत्तमम् ।।१७२।।

हे देवि! जिससे स्नान करने से देवता सुन्दर ढंग से प्रसन्न होते हैं। रात्रि में पंचमकाज करने से उत्तम पंचम कार्य होता है॥१७२॥

भगमध्येषु यद्द्रव्यं गृहणाद्य प्रयत्नतः ।
तस्यङ्कुरोद्भवं तोयं विजयं भुक्तिमुक्तिदम् ।।१७३।।

भग के मध्य में जो द्रव्य होता है उसे यत्नपूर्वक ग्रहण करना चाहिये। उसके अंकुर से उत्पन्न जल, साधक के लिये विजय, भोग और मोक्ष दोनों ही देने वाला होता है॥१७३॥

लभते भाग्ययोगेन देवतानां च दुर्लभम् ।
तस्मिन् किञ्चिज्जलं छिप्त्वा ताम्रपात्रे च धारयेत् ।।१७४।।

वह जल भाग्य से ही प्राप्त होता है। वह देवताओं को भी दुर्लभ है। उसमें थोड़ा अन्य जल मिला कर उसे ताम्रपात्र में रखे॥१७४॥

तद्द्रव्यस्नानमात्रेण देवता सुप्रसीदिति ।
स्त्रियो रजस्य प्रथमं यस्मिन् वयसि जायते ।।१७५।।
गृहणीयाच्च सुभगे ब्रह्मादीनां च दुर्लभम् ।
स्वयंभू कुसुमं नाम देवतानां च प्राप्तये ।।१७६।।

उस द्रव्य से स्नानमात्र से ही देवता प्रसन्न हो जाते हैं। स्त्रियों का प्रथम रजोदर्शन जिस अवस्था में होता है। हे सुभगे! ब्रह्मा आदि को भी

दुर्लभ उस प्रथमरज को ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि यही स्वयंभूकुसुम नाम से देवताओं की प्राप्ति का कारण है॥१७५-१७६॥

यदि भाग्यवशाद्देवि लभते सुकुमात्विदम् ।
ततः स्वदेवतानां च प्रकुर्यात्स्नानमुत्तमम् ।।१७७।।

हे देवि! भाग्यवश यदि यह स्वयंभूकुसुम प्राप्त हो ज़ाय तो उससे अपने इष्ट देवता को उत्तम स्नान कराना चाहिये॥१७७॥

वांछितं लभते मन्त्री सत्यं सत्यं वरानने ।।१७८।।

ऐसा करने से मन्त्री (मन्त्र साधक), अपना वांछितफल प्राप्त करता है। हे श्रेष्ठमुखवाली! यह सत्य से भी सत्य है॥१७८॥

स्वगुरुदत्तमन्त्रेण षडंगन्यासं समाचरेत् ।
शक्तिदेहे स्वदेहेवा पंचमं कारयेत्ततः ।
ततो जपादिकं कुर्याच्चाक्षयं लभते फलम् ।।१७९।।

उपर्युक्त विधि से स्नान के पश्चात् साधक अपने गुरु द्वारा दिये गये मन्त्र से शक्ति के शरीर में या अपने शरीर में अंगन्यास करे तत्पश्चात् पंचमकर्म का सम्पादन करे। तदनन्तर जप आदि करने से अक्षयफल प्राप्त होता है॥१७९॥

इदं रहस्यं कथितं देवतास्नानहेतवे ।
षडाम्नायेषु तन्त्रेषु रहस्यमिदमीरितम् ।।१८०।।

यह देवता के स्नानहेतु रहस्य बताया गया है। षडाम्नायों से सम्बन्धित तन्त्रों में ही यह रहस्य विशेष रूप से कहा गया है॥१८०॥

उत्तराम्नायेषु मन्त्रेषु प्रकुर्याच्च विशेषतः ।
जीवतिभर्त्तारनारीं पंचम कारयेत् प्रिये ।।१८१।।

हे प्रिये! उत्तराम्नाय के मन्त्रों से इस विधि को विशेष रूप से करना चाहिये। इसमें पंचमकार्य, जिसका पति जीवित हो उसी सधवा स्त्री से करना चाहिये॥१८१॥

तस्या भगस्य यद्द्रव्यं तच्चगोलोद्भवं मतम् ।
कुण्ड गोलोद्भवेद् द्रव्ये अभावे शृणु सुन्दरि ।।१८२।।

हे सुन्दरि! उस अवस्था में भग से प्राप्त द्रव्य गोलोद्भव कहा गया है। ऐसे कुण्ड और गोल से उत्पन्न पूजाद्रव्य के अभाव में क्या करना चाहिये, उसे सुनो॥१८२॥

कथं स्नानं प्रकुर्याच्च देवतातोषहेतवे ।
यस्य कस्यतरोः पुष्पं गृहीत्वासु प्रयत्नतः ।।१८३।।

तब देवता की सन्तुष्टि हेतु कैसे स्नान करना चाहिये उसे सुनो। शीघ्र ही जिस किसी भी वृक्ष का पुष्प प्रयत्नपूर्वक ग्रहण करना चाहिये।।१८३।।

तेषां मध्ये द्रव्यग्राह्यं हस्ताभ्यां मनस्यातदा ।
उभयो पंचमं तत्र कुर्वीत विधिवन्नरः ।।१८४।।

उनमें से द्रव्य को हाथों एवं मन से स्वीकार कर दोनों से साधक विधिवत् पंचमकर्म करे।।१८४।।

रक्तचन्दन धृष्टे च जले चैव क्षिपेत्तदा ।
तज्जलेन प्रकुर्वीत देवतास्नानमुत्तमम् ।।१८५।।

घिसे हुए लाल चन्दन और जल में उन्हें डाल कर उस जल से देवता का उत्तम स्नान सम्पन्न करे।।१८५।।

वांछितफलमाप्नोति सत्यं सत्यं वरानने ।
वल्ली पुष्पाणि सर्वाणि तरोर्पुष्पाणि यानिवा ।।१८६।।
ओषधीषु च सर्वासु यानि पुष्पाणि कानि चित् ।
तानि सर्वाणि सुभगे देवताभ्यो निवेदयेत् ।।१८७।।

उपर्युक्त स्नान के सम्पादन से साधक वांछित फल प्राप्त कर लेता है। हे श्रेष्ठ मुखवाली! यह सत्य है। यही सत्य है।

हे सुभगे! सभी वल्ली, वृक्ष और औषधियों के पुष्प जो कुछ भी प्राप्त हो सकें उन्हें ही सभी देवताओं को निवेदित करना चाहिये।।१८६-१८७।।

सर्वामन्येस्वधिष्ठानां तुलसी वर्जितानि च ।
अपराजितायाः पुष्पं च द्वयपुष्पं च यत्भवेत् ।।१८८।।
करवीरस्य यत्पुष्पं यत्पुष्पं बन्धुजीवकम् ।
कमलस्य च यत्पुष्पं यत्पुष्पं चम्पकस्य च ।।१८९।।
विशेषतश्च योग्यानि सर्वपुण्येषु सुन्दरी ।
पत्राणां बिल्वपत्राणि पूजार्थे च शुभानने ।।१९०।।

हे सुन्दरि! हे शुभमुखवाली! सभी आम्नायों से सम्बन्धित पूजन में तुलसी को छोड़ कर अपराजिता, द्वयपुष्प, करवीर (कनैल), बन्धुजीवक

(गुड़हल), कमल और चम्पक के जो फूल कहे गये हैं वे सभी पुष्पों में विशेषकर योग्य कहे गये हैं। पूज़ा हेतु पत्रों में बिल्वपत्र विशेष योग्य कहा गया है॥१८८-१९०॥

पीठवर्णनम्

अथेदानीं प्रवक्ष्यामि जपार्थं पीठमुत्तमम् ।
कृते पूर्णगिरि योग्यं त्रेतायामुड्डाण संज्ञकम् ।।१९१।।
जालंधरं च द्वापरे तु कामपीठं कलौयुगे ।
चतुः पीठानि सुभगे शक्तिदेहेषु यानि च ।।१९२।।

अब ज़प हेतु उत्तम पीठों के विषय में कहूँगा। सतयुग में पूर्णगिरिपीठ, त्रेता में उड्डानपीठ, द्वापर में जालंधरपीठ, तथा कलियुग में कामपीठ (कामाख्या) उत्तम कहे गये हैं।। हे सुभगे! शक्ति के शरीर में स्थित जो उपर्युक्त चार पीठ हैं॥१९१-१९२॥

तानि चत्वारि वक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतराणि च ।
शक्तेः सर्वः शरीरं यत् पीठं पूर्णगिरि मतम् ।।१९३।।
तस्याः शिरस्य सुभगे उड्डाणं कीर्त्तितं मया ।
स्तनौ जालधरं ज्ञेयं कामपीठं भगं स्मृतम् ।।१९४।।

हे सुभगे! उन चारों के विषय में मैं तुमसे कहूँगा जो गोपनीय से भी गोपनीय हैं। शक्ति का जो सम्पूर्ण शरीर है वही पूर्णगिरि कहा गया है। उसका शिर मेरे द्वारा उड्डानपीठ कहा गया है। उसके दोनों स्तन जालंधरपीठ जानने योग्य हैं तथा भग को कामपीठ कहा गया है॥१९३-१९४॥

सर्वेषु कामपीठं यद्देवानामपि दुर्लभम् ।
एषु पीठेषु संस्थित्वा यं यं मन्त्रं जपेत्प्रिये ।
तत्तस्य फलमाप्नोति देवताशु प्रसीदति ।।१९५।।

हे प्रिये! सभी पीठों में वह कामपीठ ही ऐसा है जो देवताओं को दुर्लभ है। इन पीठों में स्थित होकर साधक, जिन-जिन मन्त्रों का जप करता है। इनका फल प्राप्त करता है तथा देवता भी साधक पर शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं॥१९५॥

बलिदानवर्णनम्

सर्वेषां बलिदानं च देवतानां शृणु प्रिये ।
येन कृत्वाशु लभते यथोक्तं फलमुत्तमम् ।।१९६।।

हे प्रिये! सभी देवताओं के बलिदान के विषय में सुनो। जिसे करके साधक शीघ्र ही कहे अनुसार फल, प्राप्त कर लेता है॥१९६॥

नित्यं स्वभोजने काले मूलमन्त्रेण साधकः ।
कारयेद्बलिदानं च भोजनात्प्रथमं प्रिये ।।१९७।।

हे प्रिये! साधक को चाहिये कि वह अपने भोजन के पहले मूलमन्त्र से नित्य बलिदानकर्म सम्पन्न करे॥१९७॥

ततश्चानंतरं देवि शुचिस्तदगत् वा भवेत् ।।१९८।।

हे देवि! उसके बाद वह पवित्र हो या देवता के भाव से अभिभूत होवे॥१९८॥

बलिं समुद्धरेद्यत्नादेकांते स्थापयेत्तदा ।
स्थापयित्वा बलिं तत्र विहरेच्च यथासुखम् ।।१९९।।

तब बलि को प्रयत्नपूर्वक उठा कर ले जाकर एकान्त स्थान में स्थापित करे। इस प्रकार वहाँ बलि को स्थापित कर साधक को यथारुचि विहार करना चाहिये॥१९९॥

उत्तराम्नायो देवेशि मातंगी या प्रकीर्तिता ।
तस्या बलि भोजनान्ते विनैवाचमने कृते ।।२००।।
मूलमन्त्रेण सुभगेबलिं दत्वा दिने-दिने ।
किचिज्जपादिकं कृत्वा ततः आचमनादिकम् ।।२०१।।
पुनश्च रात्रै सर्वेषां बलिं कृत्वा प्रयत्नतः ।
यथोक्त विधिना कुयाद्यथोक्त फलमश्नुते ।।२०२।।

हे देवेशि! उत्तराम्नाय में जो मातंगी देवी कही गई हैं। उनके लिये बलि, भोजन के अन्त में बिना आचमन किये ही देनी चाहिये। हे सुभगे! दिन में ही उपर्युक्त रीति से बलिदान कर ही कुछ जप आदि करने के पश्चात् आचमनादि सम्पन्न करे। पुनः रात्रि में प्रयत्नपूर्वक सबको बलि करके ,यथोक्त विधि से जपादि करे तो साधक कहे अनुसार फल प्राप्त करता है॥२००-२०२॥

बलिश्च द्विविधो देवि सात्विको राजसस्तथा ।
सात्विके बलिमाख्यातो मांसरक्तादि वर्जितः ।
राजसो मांस रक्तादि युक्तः सम्प्रोच्चयते प्रिये ।।२०३।।

हे देवि! यह बलि सात्विक एवं राजस भेद से दो प्रकार की होती है। मांस और रक्त आदि से रहित बलि सात्विक कही गई है। हे प्रिये! राजस बलि ही मांस रक्तादि से युक्त कही जाती है॥२०३॥

साधकास्त्रिविधा प्रोक्ता सात्विका राजसास्तथा ।
तामसाश्च तथा देवि तेषाम् वक्ष्यामि लक्षणम् ॥२०४॥

हे देवि! साधक, सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकार के कहे गये हैं। अब मैं उनके लक्षणों को कहूँगा॥२०४॥

सात्विकाः सात्त्विकैर्युक्ताः लक्षणैश्चापि सुन्दरि ।
सात्विकं बलिदानादि नित्यं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥२०५॥

हे सुन्दरि! सात्विकसाधक वे होते हैं जो सात्विकलक्षणों से युक्त होते हैं तथा नित्य प्रयत्नपूर्वक सात्विकबलिदान आदि करते हैं॥२०५॥

राजसो राजसगुणैर्युक्तो नित्यं शुभानने ।
राजसं बलिदानादि सुवेशैः राजसैर्युतः ॥२०६॥

हे शुभ मुख वाली! नित्य राजस गुणों से युक्त राजसबलिदान आदि करने वाला, सुन्दर, राजस वेश से युक्त साधक, राजससाधक होता है॥२०६॥

तामसः तामसगुणैर्रोषादि संयुतः प्रिये ।
न श्रद्धा बलिदानेषु पूजनादिषु सुन्दरि ॥२०७॥
नस्तोत्रपठने देवि नाममात्रेण साधकः ॥२०८॥

हे सुन्दरी! हे प्रिये! तामससाधक, रोष आदि तामस गुणों से युक्त होता है तथा उसकी बलिदान एवं पूजन आदि कर्मों में श्रद्धा नहीं होती। और न उसकी स्तोत्रपाठ करने में श्रद्धा होती है। हे देवि! वह नाममात्र का साधक होता है॥॥२०७-२०८॥

मन्त्रवर्णनम्

अथेदानीं प्रवक्ष्यामि मम मन्त्राणि सुन्दरी ।
यान्यत्र मम मन्त्राणि प्रसिद्धानि स्वभावतः ॥२०९॥

हे सुन्दरी! अब मैं अपने उन मन्त्रों को कहूँगा जो इस जगत् में स्वाभाविक रूप से मेरे प्रसिद्ध मन्त्र हैं॥२०९॥

अघोराख्यं महामन्त्रं आपदुद्धारणं तथा ।
चिंतामणि ततः देवि तथा मृत्युञ्जयं वरम् ।
चण्डेश्वरं च सुभगे अर्धनारीनटेश्वरम् ॥२१०॥

हे देवि! अघोर नामक मन्त्र मेरा महामन्त्र है, आपदुद्धारण, चिन्तामणि, मृत्युञ्जय मेरे श्रेष्ठ मन्त्र हैं। हे सुभगे! इनके अतिरिक्त चण्डेश्वर, अर्धनारीनटेश्वर मन्त्र भी हैं॥२१०॥

नाना तंत्रेषु देवेशि मम मन्त्राणि यानि च ।
ज्ञातव्यानि सदा भद्रे षडाम्नायेषु तानि च ।।२११।।

हे भद्र आचरण करने वाली! हे देवेशि! षडाम्नायों के अनेक तन्त्रों में मेरे जो मन्त्र दिये गये हैं वे सदा जानने योग्य हैं॥२११॥

वामाचारेण वा देवि जप्त्वा फलमवाप्नुयात् ।
दक्षिणाचार योगेन जप्त्वा फलमवाप्नुयात् ।।२१६।।

हे देवि! मेरे उन मन्त्रों को वामाचार या दक्षिणाचार दोनों से ही जप कर साधक अभीष्टफल प्राप्त करता है॥२१२॥

विशेषतश्च सुभगे मम मन्त्राणि यानि च ।
पूर्वाम्नायेन विधिना शीघ्रकाल फलप्रदाः ।।२१३।।

हे सुभगे! मेरे जो मन्त्र हैं वे विशेष कर पूर्वाम्नाय की विधियों से शीघ्रकाल, थोड़े समय में ही साधक को फलप्रदान करने वाले हैं॥२१३॥

नाना पापहरा देवि मन्त्राः कामदुघा प्रिये ।।२१४।।

हे देवि! वे मेरे मन्त्र, अनेक पापों को दूर करने वाले, इच्छित फल देने वाले और मुझे अत्यन्त प्रिय हैं॥२१४॥

यं यं मन्त्रं जपेद्देवि वीरस्तद्गतमानसः ।
तं तं मन्त्रभावं समासाद्य फलं तं तं लभेन्नरः ।।२१५।।

हे देवि! वीर साधक जिन जिन मन्त्रों को तद्गत समाहित मन से जपता है, वह मनुष्य उन-उन भावों को प्राप्त कर उनसे सम्बन्धित अभीष्टफल को प्राप्त करता है॥२१५॥

तव मन्त्राणि देवेशि मम मन्त्राणि यानि च ।
यानि यानि प्रसिद्धानि तानि तानि वतानि च ।।२१६।।

हे देवेशि! तुम्हारे मन्त्र और मेरे जो मन्त्र हैं। जो जो प्रसिद्ध हैं वे वे यथोक्त फलदायक ही हैं॥२१६॥

यथा स्वयंभुवा देवि वेदाश्चत्वारः प्रकीर्तिताः ।
ज्ञातव्यानादिसंसिद्धाः पारम्पर्योपदेशतः ।।२१७।।

हे देवि! जैसे स्वयंभुव ब्रह्मा द्वारा कहे गये चारों वेद भली प्रकार सिद्ध हैं, परम्परा से प्राप्त उपदेश द्वारा जानने योग्य और अनादि हैं॥२१७॥

पारम्पर्यतोपि ज्ञेयाः श्रुता आम्नाय भेदतः ।
तथात्वयि मया प्रोक्ताः षडाम्नायश्च सन्निधौ ॥२१८॥

उसी प्रकार मेरे तुम्हारे मन्त्र भी आम्नाय भेद परम्परा के द्वारा सुन कर जानने योग्य हैं तथा षडाम्नायों में मेरे द्वारा कहे गये और तुम्हारे द्वारा सुने गये हैं॥२१८॥

स आम्नायः श्रुति ज्ञेयः श्रुति वदतो लभेत् ।
अतस्त्वयापि गिरिजे गोपनीयाः स्वयोनिवत् ॥२१९॥

हे गिरिजे! वे आम्नाय भी वेद ही समझे जाने चाहियें। और उन्हें वेद के ही समान करेजाने (दीक्षाक्रम) से ही जानना चाहिये। इसीलिये तुम्हारे द्वारा भी वे मन्त्र अपनी योनि के समान गुप्त रखने योग्य हैं॥२१९॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमं श्रृणु ।
बहु मन्त्री यदा देवि साधको दैव योगतः ॥२२०॥
तत्र कस्य जपं कुर्यात् पूजनादिकमेव च ।
सर्वदेव नमस्कारं नित्यं कुर्यात् प्रयत्नतः ।
जपादिकं तु तस्यैव यस्य संगमते मनः ॥२२१॥

अब मैं अत्यन्त रहस्य की बात बताता हूँ। उसे तुम ध्यान से सुनो, दैवयोग से साधक यदि बहुत से मन्त्रों का अभ्यासी हो तो उसे किस का जप या पूजन आदि करना चाहिये। यह मैं कहूँगा। ऐसा साधक नित्य सभी देवताओं को प्रयत्नपूर्वक प्रणाम करे किन्तु जपादिक तो उसी का करे जिसमें मन एकाग्र रूप से लगे॥२२०-२२१॥

गुरोर्गृहीत मन्त्रं तु जप्त्वा त्यजति साधकः ॥२२२॥
दुष्टाचाराद् प्रमादाद्वा आलस्याद्वापि सुन्दरी ।
शंकया वा गृहीतस्य कथनं यत्र कुत्राचित् ॥२२३॥
हीनवीर्यमवाप्नोति मन्त्रादिकं वरानने ।
इत्यादि दोषनाशार्थं विधानं श्रृणु साम्प्रतम् ॥२२४॥

गुरु द्वारा उपदेश के माध्यम से ग्रहण किये गये मन्त्र को जो साधक एक बार जप करने के पश्चात् दुष्टाचरणवश, उपेक्षा से, आलस्य से, शङ्का से छोड़ देता है या हे सुन्दरी! गुरुदीक्षा द्वारा गृहीत गुरुमन्त्र का उपर्युक्त कारणों से जहाँ कभी भी कथन करता है। हे वरानने! उसके मन्त्रादि हीनवीर्य, प्रभावहीनता को प्राप्त करते हैं। वह मन्त्र के प्रभाव से रहित हो जाता है। हे श्रेष्ठ मुख वाली! अब उपर्युक्त दोषों के नाश के उपाय मुझसे सुनो॥२२२-२२४॥

मन्त्रसंस्कारवर्णनम्

प्रथमं जननं नाम जीवनं तु द्वितीयकम् ।
तृतीयं ताडनं देवि चतुर्थंबोधनंमतम् ।।२२५।।
पंचमं अभिषेकश्च विमलीकरणं षष्टमम् ।
आप्यायनं सप्तमं तु अष्टमं तर्पणं मतम् ।।२२६।।
नवमं दीपनं नाम गोपनं दशमं स्मृतम् ।
मनूनां मातृकामध्यात् उद्धारो जननं मतम् ।।२२७।।

दश मन्त्र संस्कार–

पहला जनन, दूसरा जीवन, तीसरा ताडन, चौथा बोधन, पाँचवाँ अभिषेक, छठा विमलीकरण, सातवां आप्यायन, आठवाँ तर्पण, नौवाँ दीपन, दसवाँ गोपन कहे गये हैं। इनमें मातृकाओं के मध्य से मन्त्रों का उद्धार करना, जनन नामक संस्कार कहा गया है॥२२५-२२७॥

मन्त्रवर्णान् जपेन्नित्यं प्रणवान्तरितान् क्रमात् ।
एतज्जीवनं नाम ताडनं शृणु चापरम् ।।२२८।।

प्रणव ॐकार के बीच में मन्त्र के अक्षरों को क्रमशः डाल कर नित्य जप करे तो इस क्रिया को जीवन कहते हैं। अब अगले ताडन संस्कार के विषय में सुनो॥२२८॥

मनुवर्णान् समाल्लिख्य ताडयेच्चंदनाम्भसा ।
प्रत्येकं वायुना मन्त्री ताडनं नामतः स्मृतम् ।।२२९।।

जब मन्त्र वेत्ता साधक मन्त्र से सम्बन्धित प्रत्येक वर्ण को लिख कर उन्हें चन्दनमिश्रित जल या वायु से ताडित करता है तो यह संस्कार ताडन कहा जाता है॥२२९॥

मनुलिख्य विधानेन यदा मंत्रार्ण संख्यया ।
मंत्रमभिषिचेद् देवी मन्त्राणां च विशुद्धये ।।२३०।।

हे देवि! विधिपूर्वक मन्त्र को लिख कर जब मन्त्र अक्षरों की संख्या के अनुसार मन्त्र की दोष निवृत्ति हेतु मूल मन्त्र के जपपूर्वक उनका अभिषेक करे॥२३०॥

संचित्य मनसा मंत्री ज्योति मंत्रेण निर्दहेत् ।
मन्त्रे मलत्रयं देवि विमलीकरणं विदम् ।।२३१।।

हे देवि! मन्त्रसाधक मन्त्र का मानसिक रूप से चिन्तन करता हुआ ज्योतिमन्त्र के जप से उसके तीनों प्रकार के मलों को जलाये तो यह संस्कार विमलीकरण होता है॥२३१॥

तारं व्योमाग्निमनुयुग्दंडी ज्योतिर्मनुमतः ।
कुशोदकेन जप्तेन प्रत्यर्णं प्रोक्षणं मतम् ।।२३२।।

ॐ कार, व्योम (हँ), अग्नि (रँ) मनुयुग मिल कर ज्योतिमन्त्र कहा गया है। कुशोदक से जप करते हुए प्रत्येक अक्षर का प्रोक्षण, प्रोक्षण कहा गया है॥२३२॥

तेन मन्त्रेण विधिवद्देवस्याप्यायनं मतम् ।
मनुनावारिणा मन्त्रं तर्पणं तर्पणं भवेत् ।।२३३।।

देवता के उसी मन्त्र से विधिवत् आप्यायन होता है। वारि मन्त्र वँ से मन्त्र का तर्पण करना, तर्पण संस्कार होता है॥२३३॥

तारोमाया रमा योगं मनोर्दीपन मुच्यते ।
जप्यमानस्य मन्त्रस्यगोपनं त्वप्रकाशनम् ।।२३४।।

मन्त्र से तार (ॐ) माया (ह्रीं) रमा (श्रीं) का योग होना मन्त्र का दीपन कहा जाता है। जपने योग्य, दीक्षा से प्राप्त मन्त्र का प्रकाशन (प्रकटीकरण) न करना ही गोपन है॥२३४॥

एते च दस संस्काराः सर्व मन्त्रेषु गोपिताः ।
एतान्कृत्वा जपेन्मन्त्रं सदोष रहितः प्रिये ।।२३५।।

हे प्रिये! ये ऊपर कहे गए दस संस्कार सभी मन्त्रों में गोपनीय हैं। इनको करने के पश्चात् अभीष्ट मन्त्र का जप करने से वह मन्त्र, दोषरहित हो जाता है॥२३५॥

निर्गुणं यत् परं ब्रह्म अकारादि विवर्जितम् ।
साकारं यद् भवेद्देवि बहुधा तर्पणादिषु ।।२३६।।

गुरु द्वारा उपदेश के माध्यम से ग्रहण किये गये मन्त्र को जो साधक एक बार जप करने के पश्चात् दुष्टाचरणवश, उपेक्षा से, आलस्य से, शङ्का से छोड़ देता है या हे सुन्दरी! गुरुदीक्षा द्वारा गृहीत गुरुमन्त्र का उपर्युक्त कारणों से जहाँ कभी भी कथन करता है। हे वरानने! उसके मन्त्रादि हीनवीर्य, प्रभावहीनता को प्राप्त करते हैं। वह मन्त्र के प्रभाव से रहित हो जाता है। हे श्रेष्ठ मुख वाली! अब उपर्युक्त दोषों के नाश के उपाय मुझसे सुनो॥२२२-२२४॥

मन्त्रसंस्कारवर्णनम्

प्रथमं जननं नाम जीवनं तु द्वितीयकम् ।
तृतीयं ताडनं देवि चतुर्थंबोधनंमतम् ।।२२५।।
पंचमं अभिषेकश्च विमलीकरणं षष्टमम् ।
आप्यायनं सप्तमं तु अष्टमं तर्पणं मतम् ।।२२६।।
नवमं दीपनं नाम गोपनं दशमं स्मृतम् ।
मनूनां मातृकामध्यात् उद्धारो जननं मतम् ।।२२७।।

दश मन्त्र संस्कार-

पहला जनन, दूसरा जीवन, तीसरा ताडन, चौथा बोधन, पाँचवाँ अभिषेक, छठा विमलीकरण, सातवां आप्यायन, आठवाँ तर्पण, नौवाँ दीपन, दसवाँ गोपन कहे गये हैं। इनमें मातृकाओं के मध्य से मन्त्रों का उद्धार करना, जनन नामक संस्कार कहा गया है॥२२५-२२७॥

मन्त्रवर्णान् जपेन्नित्यं प्रणवान्तरितान् क्रमात् ।
एतज्जीवनं नाम ताडनं शृणु चापरम् ।।२२८।।

प्रणव ॐकार के बीच में मन्त्र के अक्षरों को क्रमशः डाल कर नित्य जप करे तो इस क्रिया को जीवन कहते हैं। अब अगले ताडन संस्कार के विषय में सुनो॥२२८॥

मनुवर्णान् समाल्लिख्य ताडयेच्चंदनाम्भसा ।
प्रत्येकं वायुना मन्त्री ताडनं नामतः स्मृतम् ।।२२९।।

जब मन्त्र वेत्ता साधक मन्त्र से सम्बन्धित प्रत्येक वर्ण को लिख कर उन्हें चन्दनमिश्रित जल या वायु से ताडित करता है तो यह संस्कार ताडन कहा जाता है॥२२९॥

मनुलिख्य विधानेन यदा मंत्रार्ण संख्यया ।
मंत्रमभिषिचेद् देवी मन्त्राणां च विशुद्धये ।।२३०।।

हे देवि! विधिपूर्वक मन्त्र को लिख कर जब मन्त्र अक्षरों की संख्या के अनुसार मन्त्र की दोष निवृत्ति हेतु मूल मन्त्र के जपपूर्वक उनका अभिषेक करे॥२३०॥

संचित्य मनसा मंत्री ज्योति मंत्रेण निर्दहेत् ।
मन्त्रे मलत्रयं देवि विमलीकरणं विदम् ।।२३१।।

हे देवि! मन्त्रसाधक मन्त्र का मानसिक रूप से चिन्तन करता हुआ ज्योतिमन्त्र के जप से उसके तीनों प्रकार के मलों को जलाये तो यह संस्कार विमलीकरण होता है॥२३१॥

तारं व्योमाग्निमनुयुग्दंडी ज्योतिर्मनुमतः ।
कुशोदकेन जप्तेन प्रत्यर्णं प्रोक्षणं मतम् ।।२३२।।

ॐ कार, व्योम (हँ), अग्नि (रँ) मनुयुग मिल कर ज्योतिमन्त्र कहा गया है। कुशोदक से जप करते हुए प्रत्येक अक्षर का प्रोक्षण, प्रोक्षण कहा गया है॥२३२॥

तेन मन्त्रेण विधिवद्देवस्याप्यायनं मतम् ।
मनुनावारिणा मन्त्रं तर्पणं तर्पणं भवेत् ।।२३३।।

देवता के उसी मन्त्र से विधिवत् आप्यायन होता है। वारि मन्त्र वँ से मन्त्र का तर्पण करना, तर्पण संस्कार होता है॥२३३॥

तारोमाया रमा योगं मनोर्दीपन मुच्यते ।
जप्यमानस्य मन्त्रस्यगोपनं त्वप्रकाशनम् ।।२३४।।

मन्त्र से तार (ॐ) माया (ह्रीं) रमा (श्रीं) का योग होना मन्त्र का दीपन कहा जाता है। जपने योग्य, दीक्षा से प्राप्त मन्त्र का प्रकाशन (प्रकटीकरण) न करना ही गोपन है॥२३४॥

एते च दस संस्काराः सर्व मन्त्रेषु गोपिताः ।
एतान्कृत्वा जपेन्मन्त्रं सदोष रहितः प्रिये ।।२३५।।

हे प्रिये! ये ऊपर कहे गए दस संस्कार सभी मन्त्रों में गोपनीय हैं। इनको करने के पश्चात् अभीष्ट मन्त्र का जप करने से वह मन्त्र, दोषरहित हो जाता है॥२३५॥

निर्गुणं यत् परं ब्रह्म अकारादि विवर्जितम् ।
साकारं यद् भवेद्देवि बहुधा तर्पणादिषु ।।२३६।।

हे देवि! जो आकार आदि से रहित परब्रह्म है, वह तर्पण आदि इन बहुत से संस्कारों से साकार हो जाता है॥२३६॥

यथा सूर्यस्य बिम्बस्य बहुधा दर्पणादिकम् ।
दृश्यते तु तथा चात्र आद्यां त्वां सर्वदेहिनाम् ।।२३७।।

जिस प्रकार सूर्य का बिम्ब दर्पणादि में बहुत प्रकार का दिखाई देता है। उसी प्रकार यहाँ आप आद्या सभी प्राणियों में दिखाई देती हैं।

एकमेव परं ब्रह्म ज्योतिरूपमनन्तरम् ।
साकारं यदि जायेत स्वेच्छयातु वरानने ।।२३८।।
रूपं द्वयं तथा भूत्वा देहिनां देहभेदतः ।
भगाकारवत ब्रह्म लिंगाकार स्वरूपतः ।।२३९।।

एकमात्र ब्रह्म जो ज्योति रूप से सबके अन्तर में स्थित है, हे श्रेष्ठ मुखवाली! यदि वही अपनी इच्छानुसार देहधारियों में शरीर भेद के अनुसार दो रूपों में होकर साकार रूप धारण करे तो कहीं भग के आकार में होगा तो कहीं लिंग के रूप में होगा॥२३८-२३९॥

केचित्सुभगे लिंगाकार स्वरूपिण ।
भगाकारस्य सेवन्ते विदुषो ज्ञानिनः सदा ।।२४०।।

हे सुभगे! कुछ साधक लिंगाकार स्वरूप ब्रह्म की उपासना करते हैं तो विद्वान् एवं ज्ञानी जन भगाकार ब्रह्म की ही सदा सेवा करते हैं॥२४०॥

स्त्री जाति रूपा सर्वत्र सर्वदेहेषु या मता ।
साशक्तिरूपा विज्ञेया पुरुषः शिवरूपवान् ।।२४१।।

जो सभी जगह सभी देहों में स्त्री जाति के रूप में मानी गई है। वही शक्ति रूप में जानने योग्य है। पुरुष शिव स्वरूप है॥२४१॥

तासां भगस्त्रिकोणं च कुण्डं प्रोक्तं तु चोत्तमम् ।
पुरुषस्य लिंगं यद्देवि शिवो ज्ञेयः सनातनः ।।२४२।।

उन शक्तियों के भग को त्रिकोण और उत्तम कुण्ड कहा गया है। पुरुष का जो लिंग है उसे सनातन शिव रूप ही जानना चाहिये॥२४२॥

तत्तत्तेषां विशेषाच्च नरदेहे वरानने ।
शक्तिः शिवश्च विज्ञेया मम संकेत मुत्तमम् ।।२४३।।

हे वरानने! उन-उनमें विशेष रूप से मनुष्य शरीर में उनको शक्ति एवं शिव के रूप में मेरा उत्तम संकेत जानना चाहिये॥२४३॥

भगकुंडं च सुभगे शिवो लिंग प्रकीर्त्तितम् ।
रजस्तु अग्निः सुभगे भगमध्येषु क्षेपनम् ।।२४४।।

हे सुभगे! भग को कुंड और लिंग शिव कहा गया है। भग के मध्य पड़ा हुआ रज अग्नि कहा गया है॥२४४॥

आज्यरूपं मतं शुक्रं मनोहोता प्रकीर्तिता ।
फलरूपं च तत्रैव नाना संसार कामना ।।२४५।।
एवं विज्ञाय यो मन्त्री मनोरूपा च कालवित् ।
नित्य होमयिता देवि तस्य पुण्यमनन्तकम् ।।२४६।।

शुक्र को घी रूप तथा मन को होता कहा गया है। उस समय उत्पन्न होने वाली अनेक प्रकार की जो संसार संबंधी कामनाएँ हैं वेही इस होम का फलरूप हैं। इस प्रकार से जान कर जो मन्त्रसाधक मनरूपी कालज्ञ नित्य होमकर्मयुक्त होता है, हे देवि! उसका पुण्य अनन्त होता है॥२४५-२४६॥

यं यं कामादिकं देवि मनसा चिन्त्य कारयेत् ।
न दोषस्तत्र विज्ञेयस्तं तं काममवाप्नुयात् ।।२४७।।

हे देवि! साधक जिन-जिन कामादि का मन से चिन्तन कर कर्म करे तो उसमें कोई दोष नहीं होता और वह अपनी उन-उन कामनाओं को प्राप्त कर लेता है॥२४७॥

यथोक्त देवताचारा यथोक्तं फलमश्नुते ।
आयुर्लक्ष्मीं यशो देवि कान्ति च मोक्षमाप्नुयात् ।।२४८।।

वह कहे अनुसार देवता के आचार से यथोक्त फल प्राप्त करता है। वह साधक आयु, लक्ष्मी, यश, कान्ति और मोक्ष, प्राप्त करता है॥२४८॥

अस्मिन् तन्त्रे च समया या मया परिकीर्त्तिता ।
सा पूर्वं विजया कल्पे चतुर्थांशसप्रकाशिता ।।२४९।।

इस तन्त्र में जिस समया का वर्णन मेरे द्वारा किया गया है वह पहले ही मेरे द्वारा विजयाकल्प में, चतुर्थांश रूप में प्रकाशित की गई है॥२४९॥

इमां विद्याश्च तन्त्रेस्मिन् रहस्यार्थे प्रकीर्त्तिताः ।
गोप्तव्याश्च प्रयत्नेन कथनीया न कश्यचित् ।।२५०।।

गोप्या गोप्याः पुर्नगोप्या
गोप्या गोप्या पुनः पुनः ।
पुनर्गोप्या पुनर्गोप्या जननीजारगर्भवत् ।।२५१।।

रहस्य सम्बन्धी ये विद्यायें जो इस तन्त्र में मेरे द्वारा कही गयी हैं। उन्हें प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये। अनधिकारी किसी से भी नहीं कही जानी चाहिये। ये वैसे ही गुप्त से भी गुप्त, बारम्बार गुप्त रखे जाने योग्य हैं जैसे माता जारप्रसव से धारण किये, अपने गर्भ को बारम्बार गोपनीय रखती है।।२५१।।

अन्तः शाक्ताश्च सुभगे बहिः शैवाश्चवैष्णवाः ।
एवं मे साधका लोके फलमापुर्नसंशयः ।।२५२।।

हे सुभगे! अन्दर से शाक्त, बाहर से शैव और वैष्णव रूप में व्यवहार करते हुए जो साधक लोक में व्यवहार करता है वह सफल होता है। इसमें कोई संशय नहीं है।।२५२।।

आचारो मम देवेशि तवाचारोऽपि च प्रिये ।
दिवसे गोपनं कृत्वा रात्रौ चैव समाचरेत् ।।२५३।।

हे प्रिये! हे देवेशि! मेरा आचार और तुम्हारा आचार (पूजादि) दिन में गुप्त रखते हुए रात्रि में सम्पन्न करना चाहिये।।२५३।।

नाना शक्ति सहालापः ये कुर्वन्ति च साधकाः ।
ते शीघ्रकालात्सुभगे फलं प्राप्ताश्च मानवाः ।।२५४।।

जो साधक अनेक शक्तियों के साथ वार्तालाप करते हुए साधना करते हैं, हे सुभगे! वे मनुष्य अल्प समय में ही इच्छित फल प्राप्त कर लेते हैं।।२५४।।

आर्द्र शुष्क विभागेन द्विधाचारः पुनः शृणु ।
आर्द्राचारः विज्ञेयो मकारैः पंचभिर्युतः ।
मकारैः पंचरहितः शुष्काचारः प्रकीर्त्तिताः ।।२५५।।

आर्द्र तथा शुष्क भेद से दो प्रकार के आचारों के विषय में सुनो। पंचमकारों से युक्त आचार, आर्द्रआचार तथा पंचमकारों से रहित आचार शुष्कआचार कहा गया है।।२५५।।

कलौ विशेषतो देवि आर्द्राचारः फलप्रदः ।
सर्वाम्नायेषु कथिता नाना तन्त्रे च देवता ।।२५६।।

विद्या मन्त्र विभागेन ते देवाश्चार्द्रतः कलौ ।
विशेषात्फलदा देवि साधका ऩाम जितात्मनोः ।।२५७।।

हे देवेशि! हे देवि! कलियुग में आर्द्राचार ही फलदायक होता है। सभी आम्नायों के अनेक तन्त्रों में जो देवता कहे गये हैं वे देवता, विद्या और मन्त्र विभाग से कलियुग में आर्द्राचार से जितात्मा साधकों को विशेष फल देने वाले होते हैं॥२५६-२५७॥

रहस्यं श्रृणु देवेशि परमं गोपनं सदा ।
सर्वाम्नायाश्च कथिता तव पार्श्वे पृथक् पृथक् ।।२५८।।

हे देवेशि! जो मेरे द्वारा तुमसे सभी आम्नाय अलग-अलग कहे गये हैं॥२५८॥

सर्वेभ्यश्चोत्तराम्नायः पश्चात् संकीर्त्तिता मया ।
गोप्यात्गोप्यतरो गुह्यो गुह्याद्गुह्यतरोमहान् ।।२५९।।

सभी आम्नायों में उत्तराम्नाय मेरे द्वारा सबके पश्चात् कहा गया जो गोपनीय से गोपनीय एवं महान् गुह्य है॥२५९॥

उत्तराम्नाय सुभगे सदा गोप्यः प्रकीर्त्तितः ।
यदि चेत्त्वत्समा लोके नारी भवति निश्चला ।।२६०।।
मत्समः पुरुषो देवि साधको यदि भूतले ।
भ्रान्ति मायादि रहितो तदा साधयितुं प्रिये ।।२६१।।
शक्तश्च साधको देवि अन्यथा हास्यतां व्रजेत् ।
आगमाचारन्तु सुभगे सर्वदा गोपनं स्मृतः ।।२६२।।

हे सुभगे! उत्तराम्नाय तो सदा गोपनीय कहा गया है। इसकी साधना तो यदि तुम्हारे समान निश्चलमतिवाली नारी एवं इस पृथ्वी पर मेरे समान साधक हो। हे प्रिये! वह भ्रान्ति और माया आदि से रहित हो तभी संभव है उस प्रकार से साधना करने में जो समर्थ हो वही साधक कहे जाने योग्य है अन्यथा वह हास्यता को प्राप्त होता है। हे सुभगे! आगमाचार को सदा गोपन ही कहा गया है॥२६०-२६२॥

उत्तराम्नायो देवेशि गोपनीयो विशेषतः ।
साधकास्तु कलौ देवि माया निन्दा संयुताः ।।२६३।।

हे देवेशि! उत्तराम्नाय ही कलियुग में विशेष रूप से गोपनीय है। हे देवि! कलियुग में साधक भी माया और निन्दादि से संयुक्त दिखायी देते हैं॥२६३॥

अजितेन्द्रिय लोलुपाश्च यथोक्ताचारवर्जिताः ।
अल्पबुद्धिरता नित्ये तस्माद्गोप्यः विशेषतः ।।२६४।।

साधक कलियुग में अजितेन्द्रिय, लोलुप, यथोक्तआचार से रहित, दुर्बुद्धि में नित्यरत होंगे। इसीलिये इसे कलियुग में विशेष रूप से गोपनीय रखना चाहिये।।२६४।।

सुपरिचिताय पुत्राय विनीताय प्रकाशयत् ।
सिद्धि हानिस्तु लभते तदा तस्य प्रकाशनात् ।
अतस्माद् गोपयेद्देवि यदित्वं मम वल्लभा ।।२६५।।

इसे भलीभाँति परिचित, विनम्र, पुत्र (शिष्य) को ही प्रकाशित करना चाहिये। अन्य के प्रकाशन से सिद्धिहानि होती है। इसीलिये हे देवि! यदि तुम मेरी प्रिया हो तो तुम्हें इसे गोपन करना चाहिये।।२६५।।

उत्तराम्नाये या माला कथिता मयि दुर्लभा ।
तासां नामानि सुभगे माला श्रृणु वदाम्यहम् ।।२६६।।
अक्षवर्णमयीमाला अलाभे हस्तपर्वजा ।
महाशंखमयीमाला अभावे स्फाटिका मता ।।२६७।।

पृथ्वी पर भी जो दुर्लभ मालायें उत्तराम्नाय में कही गई हैं हे सुभगे! तुम उनके नामों को सुनो। मैं तुमसे कहता हूँ– अक्षर वर्णों की माला सर्वोत्तम होती है। इसके न मिलने पर हाथ पर्वों (पोरों) की माला, तत्पश्चात् महाशंख की बनी माला, इन सबके अभाव में स्फटिक की बनी माला कही गयी है।।।२६६-२६७।।

स्फटिकयाश्च अभावेतु रुद्राक्ष फलनिर्मिता ।
रुद्राक्षमालाभावेतु कमलस्य फलसानुगा ।।२६८।।

स्फटिक की माला के अभाव में रुद्राक्ष के फल से बनी माला, रुद्राक्षमाला के अभाव में कमल के फूल से बनी माला प्रयोग में लानी चाहिये।।२६८।।

आसनाम्नायुत्तराम्नाये कथितानि शुभानने ।
सर्वाभावे व्याघ्रचर्मं ऐणवं कंबलादिकम् ।।२६९।।

हे शुभ मुखवाली! उत्तराम्नाय में जो आसन कहे गये हैं। उनके विषय में सुनो। सबके अभाव में व्याघ्रचर्म, मृगचर्म, कम्बल आदि के आसन बताये गये हैं।।२६९।।

यन्त्रं ताम्रे लेखयित्वा नित्यं वा संयजेत्प्रिये ।
दीपस्य ज्योति मध्ये तु मूलमन्त्रेण पूजयेत् ।।२७०।।

हे प्रिये! नित्य ताँबे के पत्र पर लिख कर यन्त्र का पूजन करना चाहिये या दीप की ज्योति के मध्य में मूलमन्त्र से पूजन करना चाहिये॥२७०॥

सर्वत्र सर्वपूजासु मूलैनैव प्रपूजयेत् ।
विसर्जनान्तं मूलेन मनसा ब्रह्मचिंतयेत् ।।२७१।।

सब जगह विसर्जनपर्यन्त सब पूजाओं को मूल मन्त्र से ही सम्पन्न करना और मूल मन्त्र से ही मानसिक रूप से ब्रह्मचिन्तन करना चाहिये॥२७१॥

सर्वद्रव्याद्यभावेतु आर्द्रकं तु प्रकीर्त्तिता ।
जलं वा तक्रक्षीरं वा भुक्ष्व कर्ममाचरेत् ।।२७२।।

सभी द्रव्यों के अभाव में आदी को कहा गया है। अतः आदी, जल, मट्ठा अथवा दूध इनमें से किसी का भी भक्षण कर पूजनकर्म का आचरण करे॥२७२॥

मकार पंचाभावेतु पंचमं कारयेत् प्रिये ।
अभावे पंचमं देवि मनसा पंचमं चरेत् ।।२७३।।

हे प्रिये! पंचमकारों के अभाव में साधक केवल पंचमकर्म सम्पन्न करे। उस पंचम के अभाव होने पर हे देवि! साधक मानसिक रूप से पंचम का ही आचरण करे॥२७३॥

एवं श्रुत्वा ततो देवि समयाचारमुत्तमम् ।
सा शिवा च प्रसन्नाभूत् यथातथ्यं प्रकाशनात् ।।२७४।।
शिवोप्यन्तः प्रसन्नोभूत् स्वयं च परमेश्वरः ।।२७५।।

तब इस उत्तम समयाचार को सुन कर वह देवि शिवा इसके यथार्थ प्रकाशन से प्रसन्न हुईं। स्वयं परमेश्वर शिव भी इसके यथातथ्य भावार्थ प्रकाशन से प्रसन्न हुए॥२७४-२७५॥

तदा प्रसन्नमनसा उवाच गिरिजां प्रति ।
सर्वाण्यागममन्त्राणि यानि यान्यपि सुन्दरि ।।२७६।।
मन्त्रादीन्यपि सर्वाणि विद्याम्नायादि कान्यपि ।
चतुर्युगेषु वर्तन्ते पारम्पर्योपदेशतः ।।२७७।।

तब प्रसन्नमन से उन्होंने गिरिजा, पार्वती से कहा– हे सुन्दरी! सभी आगमों में जो-जो मन्त्र कहे गये हैं। या विद्या आम्नाय आदि के अन्य सब मन्त्र परम्परागत उपदेश के आधार पर चारों युगों में प्रचलित रहे हैं॥२७७॥

सर्वेषां वेदवितां तु समयो प्रिय भूतले।
कृपया तव देवेशि किंचिद् किंचिद्वर्णनं शुभम् ।।२७८।।

पृथ्वी पर उन सब में वेदवेत्ताओं को समयाचार प्रिय है। हे देवेशि! तुम्हारी ही कृपा से उसका कुछ-कुछ सुन्दर वर्णन यहाँ हुआ है॥२७८॥

एतत्सर्वं तु नित्यं सर्वस्वमिदं मे प्रिये।
राज्यं देयं शिरो देयं न देयं तन्त्रमद्भुतम् ।।२७९।।

हे प्रिये! यह सब सुनिश्चित आचार है तथा यह मेरा सर्वस्व है। अत: राज्य भी दे दिया जाय, अपना शिर भी दे दिया जाय किन्तु इस अद्भुत तन्त्र को किसी को भी नहीं देना चाहिये॥२७९॥

सर्वाम्नायेषु कथितं तन्त्रं परमदुर्लभम्।
तथागोप्यं च सुभगो मातृंजार पदं यथा ।।२८०।।

यह सभी आम्नायों में कहा गया परम दुर्लभ तन्त्र है। हे सुभगे! जैसे माता जारपद को गुप्त रखती है वैसे ही यह अत्यन्त गोपनीय है॥२८०॥

यदि चेदेवं वरारोहे मयातुभ्यं प्रकाशितम्।
अतस्तु गोपयेन्नित्यं यदित्वं ममवल्लभा ।।२८१।।

हे वरारोहे! यदि तुम मेरी प्रिया हो तो मैंने तुमसे यह जो तन्त्र प्रकाशित किया है इसे तुम्हारे द्वारा नित्य गोपनीय रखना चाहिये॥२८१॥

इति श्रीपार्वतीमहेश्वरसंवादे समयाचारतन्त्रम् सम्पूर्णं।
इस प्रकार श्री पार्वती और महेश्वर संवाद के माध्यम से
समयाचारतंत्र सम्पूर्ण हुआ।
श्री गंगादेव्यै नमोनम:। श्री गुरुदिव्यमूर्तये नम:
संवत् १७३६ वर्षे मार्गशीर्ष सुदि ५ गुरुवार
पुस्तकं लिखितं श्री पा. गणेश स्वयं पठनार्थं।

***